एक क्रांतिकारी के संस्मरण

—प्रिंस क्रोपॉटकिन का रेखाचित्र और संस्मरण—

१९५७

सत्साहित्य प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल,
नई दिल्ली

पहली बार : १९५७

मूल्य

बारह आना

मुद्रक
नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स,
दिल्ली

प्रकाशकीय

क्रोपॉटकिन के नाम से हिंदी के पाठक भली-भांति परिचित है। वह रूस के महान् क्रान्तिकारियो मे से थे, पर उनकी क्राति कोरमकोर तोड-फोड की क्राति नही थी। वह ऐसी थी, जो धीरे-धीरे अपना प्रभाव डालती है और व्यक्ति तथा समाज के मूल्यो को बदल देती है। वे उच्च कोटि के वैज्ञानिक तथा चिंतक भी थे। उनकी अनेक रचनाए उपलब्ध है, जिनमे बडी महत्त्वपूर्ण विचार-सामग्री प्राप्त होती है।

हाल मे क्रोपॉटकिन की एक पुस्तक 'मण्डल' मे प्रकाशित हुई है—'क्राति की भावना'; और भी उनकी कई किताबें 'मण्डल' से निकल चुकी है। इस पुस्तक मे उनकी आत्म-कथा ('दी मेमोयर्स ऑव ए रिवोल्यूशनिस्ट') के आधार पर उनके रूस मे रहनेतक की जीवनी का सार दे दिया गया है। एक रेखा-चित्र मे उनके पूरे जीवन पर भी प्रकाश डाला गया है। साथ मे उनके जेल से भागने का वृत्तात भी उनकी आत्म-कथा मे से दिया गया है, जो इतना रोचक और रोमाचकारी है कि पढकर रोंगटे खड़े हो जाते है।

आशा है, पाठकों को इस पुस्तक से कुछ स्फूर्ति मिलेगी और वे इसके प्रसार मे सहायक होगे।

—मंत्री

विषय-सूची



एक क्रांतिकारी के संस्मरण

: १ :

प्रिंस क्रोपॉटकिन : रेखा-चित्र

"जनाब व्लादीमीर इल्यिच (लेनिन), जब आपकी आकांक्षा तो यह है कि हम एक नवीन सत्य के मसीहा बनें और नवीन राज्य के सूत्रधार, तो फिर आप किस प्रकार ऐसे वीभत्स सरकारी अत्याचारों और गैर-मुनासिब सरकारी तौर-तरीकों को अपनी स्वीकृति दे सकते हैं, जैसे कि किसी अपराध के लिए अपराधी के नाते-रिश्तेदारों को गिरफ्तार कर लेना? इससे तो ऐसा प्रतीत होता है कि आप जारशाही के विचारों से चिपके हुए हैं। पर शायद इन निरपराध आदमियों को पकड़कर आप अपनी जान की रक्षा करना चाहते हैं। क्या आप इतने अंधे हो गए हैं और अपनी तानाशाही के विचारों के इतने गुलाम बन गए हैं कि आपको यह बात नहीं सूझती कि आप-जैसे सर्वोत्तम साम्यवाद के अग्रणी के लिए यह कार्य (एवजाना तरीके द्वारा निरपराधों की गिरफ्तारी) सर्वथा अनधिकार चेष्टा है? आपका यह काम नैतिक रूप से त्रुटिपूर्ण तो है ही, बल्कि इससे यह भी प्रकट होता है कि आप मृत्यु से डरते हैं, जो सर्वथा तर्क-विहीन बात है। उस साम्यवाद के विषय में क्या कहा जाय, जिसका एक महत्त्वपूर्ण रक्षक इस प्रकार ईमानदारी की प्रत्येक भावना को पैरों तले कुचलता जाता है?"

यह है उस लाजवाब पत्र का एक अंश, जिसे अपने जीवन के अंतिम दिनों में (अपनी मृत्यु से दो महीने पूर्व) क्रोपाटकिन ने लेनिन को लिखा था। लेनिन

उन दिनों विशाल रूसी राज्य के निरंकुश शासक थे और क्रोपाटकिन ४१ वर्ष के देश-निकाले के बाद चार वर्ष अपनी मातृभूमि के दमनोद्यत वातावरण में रहकर परलोक-गमन की तैयारी कर रहे थे। इन शब्दों में उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी के उस महापुरुष की आत्मा बोल रही है, जिसने कभी अन्याय से साथ समझौता करना मुनासिब न समझा, जिसने साधन और साध्य दोनों की पवित्रता पर समान रूप से जोर दिया और जिसने ईमानदारी तथा अपरिग्रह का वह दृष्टान्त उपस्थित कर दिया, जिसकी मिसाल संसार के राजनैतिक कार्यकर्ताओं के इतिहास में दुर्लभ ही है।

जब केरेन्स्की ने क्रोपाटकिन से कहा, "आप हमारे सरकारी मंत्रि-मण्डल में चाहे जिस पद को चुन लीजिए, वही आपको अर्पित हो जायगा", उस समय क्रोपाटकिन ने उत्तर दिया था—"मंत्रित्व के कार्य की अपेक्षा तो मैं जूतों पर पालिश करनेवाले चमार का काम अधिक आदरणीय तथा उपयोगी मानता हूँ।" इसी प्रकार दस हजार रूबल की पेंशन के प्रस्ताव को उन्होंने ठुकरा दिया और जार के शासनकालीन महलों में निवास की सर्वथा उपेक्षा की। यह तो हुई लेनिन के पूर्व के शासकों के समय की बात, स्वयं साम्यवादी सरकार के शिक्षा-मंत्री लूनाचर्स्की ने जब क्रोपाटकिन को लिखा, "आप सरकार से ढाई लाख रूबल लेकर अपनी किताबों के छापने का अधिकार हमें दे दीजिए", तो क्रोपाटकिन ने उत्तर दिया—"मैंने तो कभी शासन से पैसा लिया नहीं और न अब ही सरकारी सहायता ग्रहण कर सकता हूँ।" यह उन दिनों की बात है, जब क्रोपाटकिन को वृद्धावस्था के अनुरूप पर्याप्त भोजन भी नहीं मिलता था, जब उनके पास रोशनी की भी कमी थी और कोई सहायक भी नहीं था।

तो फिर आदर्शवाद को पराकाष्ठा तक पहुँचा देनेवाले क्रोपाटकिन अपनी गुजर-बसर कैसे करते थे? देश-निकाले के ४१ वर्ष उन्होंने अपनी लेखनी के बल-बूते पर ही काट दिए। इसमें भी अराजकवादी लेखों से उन्होंने एक पैसा नहीं कमाया। वह अत्यन्त उच्चकोटि के वैज्ञानिक थे और विज्ञान-सम्बन्धी लेखों तथा टिप्पणियों से उन्हें कुछ मजदूरी मिल जाती

थी। बड़ी सादगी के साथ उन्होंने अपने आत्म-चरित में लिखा है—"अगर रूस से पर्याप्त समाचार आ जाते अथवा वैज्ञानिक विषयों पर भी नोट स्वीकृत हो जाते, तो रोटी-चाय के साथ मक्खन भी मिल जाता था, नहीं तो रूखी रोटी पर ही गुजर करनी पड़ती थी।"

सुप्रसिद्ध लेखक फ्रैंक हैरिस ने क्रोपॉटकिन के इंगलैण्ड के प्रवास के दिनों के आतिथ्य का एक अच्छा शब्द-चित्र खींचा है—"क्रोपॉटकिन की धर्मपत्नी सोफी भोजन तैयार कर रही है, पति के लिए, छोटी-सी पुत्री के लिए और अपने लिए, कि इतने में कोई अतिथि महोदय न जाने कहाँ से आ टपके! क्रोपॉटकिन ने शीघ्र ही भीतर जाकर कहा—'सोफी, जरा साग में थोड़ा पानी मिला देना।' थोड़ी देर बाद एक और अतिथि देव पधारे और क्रोपॉटकिन को फिर भीतर जाकर कहना पड़ा—'कुछ पानी और भी।' इस प्रकार की क्रिया कई बार करनी पड़ी और सोफी को ढाई आदमियों के बजाय छ-सात आदमियों को भोजन खिलाना पड़ा! मेहमानदारी क्रोपॉटकिन के अत्यंत प्रिय गुणों में से थी और कोई बिल्कुल अजनबी आदमी भी उनके घर पर संकोच अनुभव न करता था।"

संसार में अनेक राजनैतिक महापुरुष हुए हैं और होंगे, पर मस्तिष्क की विशालता, हृदय की उदारता, चरित्र की स्वच्छता और जीवन की उच्चता के खयाल से क्रोपॉटकिन का दृष्टांत प्रायः अनुपम ही सिद्ध होगा। वैसे प्रारंभिक तथा यौवन के वर्षों की दृष्टि से क्रोपॉटकिन के जीवन का सर्वोत्तम वृत्तांत तो उनके आत्म-चरित 'मेमोयर्स ऑव ए रिवोल्यूशनिस्ट' से ही मिल सकता है, पर वह ग्रंथ सन् १८९८ तक का ही है और उसके बाद क्रोपॉटकिन २३ वर्ष और जीवित रहे थे। इस कारण उनके एक विस्तृत जीवन-चरित की आवश्यकता थी और उसकी पूर्ति जार्ज वुडकोक और आइवन अवाकुमोविक नाम के दो ग्रंथकारों ने की है। (प्रिंस पीटर क्रोपाट-किन—प्रकाशक बोर्डमैन)।

क्रोपॉटकिन का जन्म सन् १८४२ में हुआ और मृत्यु १९२१ में। उनके जीवन-चरित में तत्कालीन रूस का एक चलता-फिरता चित्र दिखाई देता

है। उनका आत्म-चरित्र इतनी खूबी के साथ लिखा गया है कि उसे उन्नीसवीं शताब्दी का सर्वोत्तम आत्म-चरित्र कहा जाता है। क्रोपाटकिन का जीवन एकांगी न था, वह बहुअंगीय था। क्रान्तिकारी अराजकवादी तो वह थे ही, पर साथ-ही-साथ संसार के भूगोलवेत्ताओं में भी वह शिरोमणि थे और समाजविज्ञान के भी जाने-माने आचार्य। रूस तथा यूरोप के गत सौ वर्ष के इतिहास पर भी उनके जीवन से विशेष प्रभाव पड़ा है।

क्रोपाटकिन के इस जीवन-चरित्र को पढ़ते हुए हमें उनके और गांधीजी के जीवन तथा दृष्टिकोण में अद्भुत साम्य प्रतीत हुआ। साधनों की पवित्रता पर वह उतना ही जोर देते थे, जितना कि महात्मा गांधी। मेरी गोल्ड स्मिथ नामक एक यहूदी अराजकवादी ने लिखा है—"जो भी नवयुवक क्रोपाटकिन से मिलने जाता था, उसका कथन वह बड़ी प्रेमपूर्ण सुस्पष्ट और सौम्य भावना से सुनते थे; पर एक बात थी, वह यह कि यद्यपि प्रत्येक ईमानदार तथा उत्साही युवक के प्रति उनका व्यवहार उदारतापूर्ण रहता था, तथापि साधनों के चुनाव के विषय में काफी कठोरता से काम लेते थे। प्रचार के कुछ ढंगों को क्रोपाटकिन असह्य मानते थे। अनुचित साधनों का जिक्र करते ही उनका स्वर कठोर हो जाता था और उनकी निंदा बिना किसी लाग-लपेट से होती थी। 'चाहे जैसे बुरे-भले साधनों से अपने ध्येय की प्राप्ति' इस सिद्धान्त से उन्हें घोर घृणा थी और कोई भी प्रश्न हो—चाहे संगठन का, या रुपये एकत्र करने का, या विरोधियों के प्रति व्यवहार का, या दूसरी पार्टियों के साथ संबंध स्थापित करने का—अगर कोई साधनों की पवित्रता को नगण्य मानता, तो वह उसे नफरत की निगाह से देखते थे और उसे निकृष्ट मानते थे।"

श्री जवाहरलालजी का कथन है कि 'साधनों की पवित्रता' पर जोर देकर महात्माजी ने राजनीति को बड़े ऊँचे धरातल पर ला दिया। संसार की राजनीति को यह उनकी एक बड़ी देन थी। इस विषय में क्रोपाटकिन उनके अग्रणी ही थे।

शिक्षा, कृषि, शारीरिक श्रम का महत्त्व और विकेंद्रीकरण के सिद्धांतों

पर तो दोनों महापुरुषों के विचार बिल्कुल मिलते-जुलते हैं। सन् १८९६ में जब टाउनसाइड के कुछ कार्यकर्ता एक कृषि-संघ कायम करके खेती करना चाहते थे, क्रोपॉटकिन ने उन्हें एक पत्र लिखकर प्रोत्साहित किया था और साथ ही मार्ग की बाधाओं के विषय में भी आगाह कर दिया था। उन्होंने बतलाया था कि छोटे समूह में अक्सर झगड़े उठ खड़े होते हैं, शहरी कार्यकर्ताओं के लिए भूमि पर काम करना मुश्किल हो जाता है। पत्नी की रुचि का खतरा अलग रहता है और संन्यासीपन की भावना भी गलत रास्ते पर ले जाती है। इसके बाद उन्होंने लिखा था—"यदि खेती का काम तुमको आकर्षक लगता है तो उसी को ग्रहण करो। तुम्हें उसमें अपने पूर्वजों की अपेक्षा सफलता की आशा अधिक है। कम-से-कम तुम्हें सहानुभूति मिलेगी ही और मेरी सद्भावना तो बराबर तुम्हारे साथ रहेगी।'

क्रोपॉटकिन ने कृषि के विषय में भी अनुसंधान किए थे। जब वह [illegible] जेल में थे, तो सरकार ने उन्हें अपने कृषि-संबंधी प्रयोगों के लिए एक खेत दे दिया था, और ऐसा कहा जाता है कि उन्होंने जो प्रयोग वहां किए थे उन्होंने कृषि-जगत् में एक क्रान्ति ही कर दी! उन्हीं प्रयोगों के आधार पर उन्होंने अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक 'फील्ड्स, फैक्टरीज एंड वर्कशाप्स' लिखी। नई तालीम के अनेक मूल सिद्धान्त इस पुस्तक में मौजूद हैं।

क्रोपॉटकिन के जीवन-चरित्र के लेखकों ने लिखा है—"क्रोपॉटकिन तथा उनके साथियों में आतंकवाद पर बराबर मतभेद रहा।' स्वयं क्रोपॉटकिन ने भी एक जगह लिखा है—'[illegible] का पहला दौर ऐसा था कि आतंक की प्रतिष्ठा एक सिद्धान्त के रूप में कर देना मूर्खतापूर्ण है।' इस संबंध में सन् १८९३ की एक महत्त्वपूर्ण घटना कही जाती है। [illegible] में हड़ताल हो गई थी। इंग्लैंड के मजदूर नेता एक होटल में इकट्ठे हुए थे और उन्होंने क्रोपॉटकिन को भी निमंत्रित किया था। हड़ताल काल के मजदूरों के कष्टों के निवारण की चर्चा चलती रही, सभी लोग एक-दूसरे से सहमत रहे, पर ज्योंही उपायों का जिक्र किया कि क्रोपॉटकिन की 'शांति-प्रियता' ने मानो मेज पर विस्फोटक का काम किया। मजदूर-नेता [illegible] सभी

नेता सरकार के विरुद्ध और कठोर उपाय काम में लाने के पक्षपाती निकले। इसके विपरीत क्रोपाटकिन का कहना था कि हमें समाजवाद, श्रेणी-रहित तथा प्रचार में ही काम लेना चाहिए। इस वाद-विवाद का नतीजा यह हुआ कि सभा भंग होगई। टामस मैन नामक मजदूर नेता बार-बार चिल्ला रहे थे—"हमें विप्लव की नीति का आश्रय लेना चाहिए, चीजों का तोड़-फोड़ करना चाहिए, जालिमों को खत्म कर देना चाहिए।" लेकिन ज्योंही कुछ शांति होती, फिर क्रोपाटकिन अपने वैज्ञानिक लहजे में बड़ी विनम्रता से बराबर यही कहते सुनाई देते—"नहीं, विनाश नहीं, हमें निर्माण करना चाहिए। हमें मनुष्यों के हृदय का निर्माण करना चाहिए।" ये शब्द तो बिलकुल महात्मा गांधी के जैसे ही प्रतीत होते हैं, और उन दिनों—१८९३ में—महात्माजी ने दक्षिण अफ्रीका में वकालत के लिए प्रवेश ही किया था।

देश का—देश का ही नहीं, संसार का—यह दुर्भाग्य है कि हमारे यहां संसार के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध विचारकों के विचारों का सारांश निकालनेवाले विद्वान बहुत कम हैं, और खास तौर से आज तो, जबकि दुनिया चौराहे पर खड़ी हुई है और उसके सामने ठीक मार्ग ग्रहण करने का प्रश्न उपस्थित है, यह विषय और भी अधिक महत्त्वपूर्ण बन जाता है। एक मार्ग है क्रोपाटकिन तथा गांधीजी का और दूसरा है मार्क्स और स्टालिन का।

महापुरुषों के जीवन-चरित्र में अद्भुत स्फूर्ति प्रदान करने की सामर्थ्य होती है, और इस दृष्टि से क्रोपाटकिन का जीवन-चरित्र खासा महत्त्व रखता है। एक अजीब सिनेमा-जैसा दृश्य यह हमारी आंखों के सामने उपस्थित करता है! एक अत्यन्त प्राचीन और उच्च वंश में जन्म, हजारों से अत्याचारों का घनघोर आडम्बर, गुलामों की प्रथा का दौर-दौरा, आठ वर्ष की उम्र में जार के पार्षद बालक, १५ वर्ष की अवस्था में फ्रेंच भाषा का अध्ययन और फ्रांसीसी क्रांतिकारी साहित्य में रुचि, अपने बड़े भाई एलेक्जेंडर के साथ हार्दिक प्रेम, फौजी स्कूल में शिक्षा, साइबेरिया की यात्रा—गवर्नर जनरल के ए० डी० सी० बनकर फिर रूस में लौटकर, तत्पश्चात् सेंट पीटर्सबर्ग के विश्वविद्यालय में पांच वर्ष तक गणित तथा भूगोल का अध्ययन, क्रांतिकारी

दल में सम्मिलित होना, यूरोप की यात्रा और वहां अराजकतावादी नेताओं का संपर्क, रूस लौटकर क्रान्तिकारी विचारों का प्रचार आदि । इसके बाद का दृश्य ए. जी. गार्डिनर के रेखाचित्र में देख लीजिए :

"नाटक का पर्दा बदलता है । जार निकोलस की अंधेरी रात दूर होगई । लेकिन उसके बाद दासत्व-प्रथा बंद होने के कारण थोड़ी देर के लिए जो उषाकाल आया था, उसे स्लोलिपिन प्रतिक्रिया के अंधकार ने ढक लिया और रूस फिर पुलिस के अत्याचारों से कुचला जाने लगा । सैकड़ों निरपराध आदमी फांसी पर लटका दिये गए और हजारों ही जेल में ठूंस दिये गए, अथवा साइबेरिया में अपनी कब्र खोदने के लिए निर्वासित कर दिये गए । सारे रूस पर भय और आतंक का राज्य था, लेकिन भीतर-ही-भीतर रूस जाग्रत हो रहा था । जार एलेक्जेंडर द्वितीय ने अपने शासन का सूत्र दो जालिम पुलिस अफसरों—ट्रेपोफ और शुवालोफ—को सौंप दिया था । वे चाहे जिसे फांसी पर लटका देते थे और चाहे जिसे निर्वासित कर देते थे । लेकिन फिर भी वे क्रान्तिकारी गुप्त समितियों की कार्रवाइयों को रोकने में सफल नहीं हुए । ये समितियां दनादन स्वाधीनता तथा क्रांति का साहित्य जनसाधारण में बांट रही थीं । इस घोर अशान्तिमय वायुमंडल में भेड़ की खाल ओढ़े एक अद्भुत व्यक्ति, भूत की तरह, इधर-से-उधर घूम रहा है । उसका नाम बोरोडिन है । पुलिस के अफसर हाथ मल-मलकर कहते हैं—'बस, अगर हम लोग बोरोडिन को किसी तरह पकड़ लें तो इस क्रान्तिकारी सर्पिणी का मुंह ही कुचल जाय—हां, बोरोडिन को और उसके साथी-संगियों को !' लेकिन बोरोडिन को पकड़ना आसान काम नहीं । जिन किसानों और मजदूरों के बीच में वह काम करता है, वे उसके साथ विश्वासघात करने के लिए तैयार नहीं । वे सैकड़ों की संख्या में पकड़े जाते हैं, कुछ को जेल का दंड मिलता है और कुछ को फांसी का; पर वे बोरोडिन का असली नाम और पता बतलाने के लिए तैयार नहीं होते ।

"सन् १८७४ की वसन्त ऋतु । सन्ध्या का समय । सेंट पीटर्सबर्ग के सभी वैज्ञानिक और विज्ञान-प्रेमी ज्योग्राफिकल सोसाइटी के भवन

मे महान् वैज्ञानिक प्रिंस क्रोपाटकिन का व्याख्यान सुनने के लिए एकत्र हुए हैं। फिनलैंड की यात्रा के परिणामों के विषय में उनका भाषण होता है। रूस के 'डाइल्यूवियल' (जलप्लावन) काल के विषय में वैज्ञानिकों ने जो सिद्धान्त अबतक कायम कर रखे थे, वे एक-के-बाद दूसरे खण्डित होते जाते हैं और अकाट्य तर्कों के आधार पर एक नवीन सिद्धान्त की स्थापना होती है। सारे वैज्ञानिक जगत् में क्रोपाटकिन की धाक जम जाती है। इस महापुरुष के सम्बन्ध के विषय में क्या कहा जाय! उनका ज्ञान भिन्न-भिन्न शास्त्रों तथा विज्ञानों के सबसे ऊँचे मापदण्ड पर है। वह महान् गणितज्ञ है, ग्रन्थकार है (बारह वर्ष की उम्र में उन्होंने उपन्यास लिखे थे!), वह संगीतज्ञ है और दार्शनिक। बीस भाषाओं का वह ज्ञाता है और सात भाषाओं में वह आसानी के साथ बातचीत कर सकता है। तीस वर्ष की उम्र में रूस के चोटी के विद्वानों में—उस महान् देश के कीर्ति-स्तम्भों में—प्रिंस क्रोपाटकिन की गणना होने लगती है। प्रिंस क्रोपाटकिन को बाल्यावस्था में फौजी काम सीखना पड़ा था, और पाँच वर्ष बाद जब उनके सामने स्थान के चुनाव का सवाल आया तो उन्होंने साइबेरिया को चुना था। वहाँ कुमार ने जो योजना उन्होंने पेश की और आमूर नदिया की यात्रा करके एशिया के भूगोल की भद्दी भूलों का जिस तरह संशोधन किया, उससे उनकी कीर्ति पहले से ही फैल चुकी थी, पर आज तो भौगोलिक जगत में विजय का सेहरा उन्हींके सिर बाँध दिया गया। प्रिंस क्रोपाटकिन ज्योग्राफिकल सोसाइटी के 'फिजीकल ज्योग्राफी' विभाग के सभापति मनोनीत किये गए। भाषण के बाद ज्योंही गाड़ी में बैठकर वह बाहर निकले, एक दूसरी गाड़ी उनके पास से गुजरी; उस कुहासे में उस गाड़ी में से पुकारकर कहा—'मिस्टर बोरोडिन, नमस्ते!' दोनों गाड़ियाँ ठहरा दी गईं। कुहासे के पीछे खुफिया पुलिस का एक आदमी उस गाड़ी में से कूद पड़ा और बोला—'मिस्टर बोरोडिन उर्फ प्रिंस क्रोपाटकिन, मैं आपको गिरफ्तार करता हूँ।' उस बाबू के इशारे पर पुलिस के आदमी कूद पड़े। उनका विरोध करना व्यर्थ होता, क्रोपाटकिन पकड़ लिये गए। सिपाहियोंवाली कुहासा दूसरी गाड़ी से उनके पीछे-पीछे चला।"

इसके बाद वह किस तरह किले की जेल में डाल दिये गए, वहां उन्हें क्या-क्या यातनाएं सहनी पड़ीं, और वहां से वह किस तरह भाग निकले, इसका अत्यंत मनोरंजक वृत्तांत पाठक इस पुस्तक में पढ़ सकते हैं।

सन १८७६ से लेकर १९१७ तक ४१ वर्ष क्रोपॉटकिन को स्वदेश से बाहर व्यतीत करने पड़े। कठोर-से-कठोर साधना का यह लंबा युग केवल उनके जीवन का ही नहीं, संसार के राजनैतिक इतिहास का भी एक महत्व-पूर्ण अध्याय है। इस बीच वह स्विटजरलैंड और फ्रांस में भी रहे और दो-ढाई वर्ष के लिए उन्हें फ्रांसीसी जेल की भी हवा खानी पड़ी। उनके सभी महत्वपूर्ण ग्रंथ इसी युग में लिखे गए। इनमें कई तो ऐसे हैं, जिनका विश्वव्यापी महत्त्व है, जैसे 'पारस्परिक सहयोग' और 'रोटी का सवाल' आदि। उनके क्रांतिकारी लेखों के भी कई संग्रह भिन्न-भिन्न भाषाओं में छपे थे और अनेक रचनाएं हिंदी में भी छप चुकी हैं।

क्रोपॉटकिन ने लंदन में सन् १८८६ में 'फ्रीडम' नामक पत्र प्रारम्भ किया, जो अबतक चल रहा है। इसी वर्ष क्रोपॉटकिन के जीवन की एक अत्यंत दुःखमय घटना घटी, उनके बड़े भाई ने साइबेरिया में लौटते हुए रास्ते में आत्मघात कर लिया। उन्हें भी देश-निकाले का दंड दिया गया था जिसके कारण बारह वर्ष उन्हें साइबेरिया में बिताने पड़े थे। जब उनके छुटकारे के दिन निकट आए तो उन्होंने अपने बाल-बच्चों को पहले ही रूस रवाना कर दिया और फिर एक दिन निराशा से अभिभूत होकर अपने-आपको गोली मार ली! वह महान् गणितज्ञ थे, खगोलशास्त्र के अद्भुत ज्ञाता थे, और ज्योतिष-शास्त्र के बड़े-से-बड़े विद्वानों ने उनकी कल्पनाशील प्रतिभा की बहुत प्रशंसा की थी। सहज आशंका के आधार पर उन्हें जारशाही ने देश-निकाले का दंड दे दिया था, जबकि क्रांतिकारी दलों से उनका कोई भी संबंध न था! यदि उन्हें स्वाधीनतापूर्वक अपने खगोल-संबंधी अनुसंधान करने की सुविधा होती, तो उस शास्त्र की उन्नति में न जाने कितने सहायक हुए होते। पर निरंकुश शासकों में भला इतनी कल्पना-शक्ति कहां! क्रोपॉटकिन

के हृदय में उनके प्रति अत्यन्त श्रद्धा थी। इन दोनों भाइयों का प्रेम-पूर्ण व्यवहार आदर्श था, पर क्रोपॉटकिन ने अपनी इस हृदय-भेदक दुर्घटना का जिक्र अत्यन्त संयम के साथ केवल एक वाक्य में किया है—'हमारी कुटिया पर कई महीने तक दुःख की घटा छाई रही।" क्रोपॉटकिन ने अपनी भाभी तथा भतीजे-भतीजियों की यथाशक्ति सेवा की।

क्रोपॉटकिन की समस्त शिक्षाओं का आधार उनकी मनुष्यता थी। वस्तुतः अराजकवाद इस विषय में मार्क्सवाद से सर्वथा भिन्न है। मार्क्सवादियों की दृष्टि में व्यक्ति का कोई महत्त्व नहीं। मार्क्सवादी उसके साथ शतरंज के मुहरे की भाँति व्यवहार करते हैं और सिद्धान्त-सम्बन्धी मतभेद होने पर उसके शरीर तथा आत्मा को अलग-अलग कर देने में भी उन्हें कोई संकोच नहीं होता। पर अराजकवादी के लिए मनुष्य वस्तुतः मनुष्य है, जिसके लिए मानो उसका हृदय उमड़ा पड़ता है। साम्यवादी को अपनी 'प्रणाली' की चिन्ता है, जबकि अराजकवादी को 'मनुष्य' की। जब भी कभी अन्याय तथा अत्याचार का प्रश्न आता, क्रोपॉटकिन बिना किसी भेदभाव के उसका विरोध करते—चाहे वह अन्याय उनके विरोधी पक्षवाले पर ही क्यों न किया गया हो। उनके शब्द सुन लीजिए—"हम व्यक्ति की पूर्ण स्वाधीनता को मानते हैं। हम उसके लिए जीवन की प्रचुरता तथा उसकी समस्त प्रतिभाओं का स्वतन्त्र विकास चाहते हैं। हम उसके ऊपर लादना कुछ भी नहीं चाहते। इस प्रकार हम उस सिद्धान्त पर पहुँचते हैं, जिस सिद्धान्त को फ्यूरियर ने धार्मिक नीति-शास्त्र के विरोध में रखते हुए कहा था—'मनुष्य को बिल्कुल स्वतन्त्र छोड़ दो। उसे अंगहीन मत बनाओ, क्योंकि धर्म पहले से ही उसका आवश्यकता से ज्यादा अंग-भंग कर चुका है।' उसके मनोविकारों से भी मत डरो। स्वतन्त्र समाज में ये खतरनाक नहीं होते।"

जिस क्रोपॉटकिन के ग्रन्थों को पढ़ जाइए, कहीं भी कोई क्षुद्र भावना उनमें दिखाई न देगी। कम्युनिस्ट साहित्य में बौद्धिक ईमान का उसमें नामो-निशान तक नहीं है। कम्युनिस्ट स्वार्थ-सिद्धि को इतना महत्त्व देते हैं और नैतिकता को इतना नगण्य मानते हैं कि उनके साहित्य की छानबीन में किसी

भी सहृदय मनुष्य की आत्मा झुलस मरती है। क्रोपॉटकिन का साहित्य इसके बिल्कुल विपरीत है। उसमें नैतिकता की शीतल मंद समीर सदा ही बहती रहती है।

क्रोपॉटकिन के ४१ वर्षीय देश-निकाले के कितने ही किस्से उनके जीवन-चरित में तथा उनके विषय में लिखे संस्मरणों में यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं, जिनसे उनकी सत प्रकृति पर पूरा-पूरा प्रकाश पड़ता है। एक बार फ्रैंक हैरिस ने उनसे कहा—"आपने देखा, इन अराजकतावादियों ने यौवनावस्था में तो खूब काम किया, पर अब वे अर्थ-लोलुपता के शिकार होगए हैं।" इसपर क्रोपॉटकिन ने उत्तर दिया—"उन लोगों ने जोश-जवानी के दिन हमारे अर्पित कर दिए और अपना सर्वोत्तम हमें भेंट कर दिया। अब इससे अधिक की माग उनसे हम कर ही क्या सकते हैं?" यह उदारता ही क्रोपाट-किन के सपूर्ण जीवन की कुजी थी।

विलायत में रहते हुए क्रोपॉटकिन की मैत्री वहा के सर्वश्रेष्ठ विचारकों तथा कार्यकर्ताओं से होगई थी। उनमें से कितने ही उनके प्रशसक थे। हिंडमैन, बरनार्ड शा, लैंसबरी, एडवर्ड कारपेंटर, नैविनसन और ब्रैल्स-फोर्ड प्रभृति से उनके सबध बहुत निकट के थे। जब क्रोपॉटकिन ७० वर्ष के हुए तो उनके अभिनदन के लिए आयोजित एक सभा में बरनार्ड शा ने कहा था—"मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि इतने वर्ष तक हम लोग गलत रास्ते पर चलते रहे हैं, और क्रोपॉटकिन का रास्ता ही ठीक था।' तपस्वियों तथा विचारकों की विचारधारा बहुत धीरे-धीरे काम करती है। क्रोपॉटकिन ने अपनी वाणी तथा लेखनी द्वारा जो महान कार्य किया, उसने केवल इंग्लैंड ही नहीं, फ्रास, इटली, स्विटजरलैंड तथा यूरोप के अन्य देशों के विचारकों को भी प्रभावित किया और जो विचार उन दिनों नवीन प्रतीत होते थे, वे आज सार्वजनिक बन गए हैं।

सन् १९१७ की रूसी क्रांति के बाद क्रोपॉटकिन ने स्वदेश लौटना उचित समझा। तब वह ७५ वर्ष के हो गये थे, फिर भी उनके मन में युवकों-जैसा उत्साह था। पेट्रोग्रेड में ६० हजार आदमियों ने उनका स्वागत किया

और रूसी सरकार के प्रधान केरेन्स्की भी उनके स्वागतार्थ उत्सुक थे। पर क्रोपाटकिन का विश्वास किसी भी सरकार में नहीं था, इसलिए उन्होंने कोई सरकारी पद ग्रहण नहीं किया। वैसे केरेन्स्की के साथ उनके संबंध अच्छे थे, पर लेनिन के हाथ में शक्ति पहुंचने पर क्रोपाटकिन सर्वथा उपेक्षा के ही पात्र बन गये।

क्रोपाटकिन के अन्तिम दिनों की एक झांकी एमा गोल्डमैन के आत्म-चरित 'लिविंग माइ लाइफ' में मिलती है। उन्होंने लिखा है—"रूस पहुंचने पर मुझे कम्युनिस्टों ने बार-बार विश्वास दिलाया था कि क्रोपाटकिन तो बड़े आराम की जिन्दगी बसर कर रहे हैं और उन्हें न भोजन-वस्त्र की कमी है, न किसी अन्य वस्तु की। पर जब मैं क्रोपाटकिन के घर पहुंची तो मामला इसके विपरीत ही पाया। क्रोपाटकिन, उनकी पत्नी सोफी तथा लड़की एलैक्जेंड्रा, तीनों एक कमरे में रहते थे और वह कमरा भी काफी गरम नहीं था तथा बाकी के कमरे इतने ठंडे थे कि उनका तापमान शून्य से भी नीचे था। उन्हें जो भोजन मिलता था वह बस जीवित रहनेभर के लिए पर्याप्त था। जिस सहकारी समिति से उन्हें राशन मिलता था, वह टूट चुकी थी और उसके सदस्य जेल भेज दिये गए थे। मैंने सोफी से पूछा—'गुजर-बसर कैसे होती है?' उन्होंने उत्तर दिया—'हमारे पास एक गाय है और बगीचे में भी कुछ पैदा हो जाता है। साथी लोग बाहर से कुछ भेज देते हैं। अगर पीटर (क्रोपाटकिन) बीमार न होते और उन्हें अधिक पौष्टिक भोजन की जरूरत न होती तो हम लोगों का काम चल जाता।"

लार्ड लैंसबरी इन्हीं दिनों रूस गए हुए थे। उन्होंने एमा गोल्डमैन से कहा था—"मुझे तो यह बात असम्भव लगती है कि सोवियत सरकार के उच्च पदाधिकारी क्रोपाटकिन-जैसे महान् वैज्ञानिक को इस प्रकार भूखों मरने देंगे। हम लोग इंग्लैंड में तो इस प्रकार के अत्याचार को असह्य समझेंगे।"

क्रोपाटकिन उन दिनों अपनी अंतिम पुस्तक 'नीतिशास्त्र' लिख रहे थे। विचारों को साफ करने के लिए उनके पास पैसे नहीं थे। क्लर्क या टाइपिस्ट

रखने की तो वह कल्पना भी नहीं कर सकते थे; इसलिए अपने ग्रंथ की पाण्डुलिपि उन्हें खुद ही तैयार करनी पड़ती थी। भोजन भी उन्हें पुष्टिकर नहीं मिल पाता था, जिससे उनकी कमजोरी बढ़ती जाती थी और मंद धुंधले दीपक की रोशनी में उन्हें अपने ग्रंथ की रचना करनी पड़ती थी!

जब क्रोपॉटकिन मरणासन्न हुए तो अवश्य लेनिन ने मास्को से सर्वश्रेष्ठ डाक्टर और भोजन इत्यादि की सामग्री भेजी थी और यह आदेश भी दे दिया था कि क्रोपॉटकिन के स्वास्थ्य के समाचार उनके पास बराबर भेजे जायं! जीवन के अंतिम दिनों में जिसे दमघोंटू वातावरण में रहने के लिए मजबूर किया गया, उसकी मृत्यु के समय इतनी चिंता का अर्थ ही क्या हो सकता था? ८ फरवरी, १९२१ को क्रोपॉटकिन का देहान्त हो गया। लेनिन की सरकार ने सरकारी तौर पर उनकी अंत्येष्टि करने का विचार प्रकट किया, जिसे उनकी पत्नी तथा साथी-संगियों ने तुरन्त अस्वीकार कर दिया। अराजकवादियों के मजदूर-संघ के भवन से उनके शव का जुलूस निकला, जिसमें २० हजार मजदूर थे। सर्दी इतने जोरों की थी कि बाजे तक सर्दी के कारण जम गए! लोग काले झंडे लिये हुए थे और चिल्ला रहे थे—"क्रोपॉटकिन के संगी-साथियों को, अराजकवादी बन्धुओं, जेल से छोड़ो!"

सोवियत सरकार ने दिमित्रोव का छोटा-सा घर क्रोपॉटकिन की विधवा पत्नी को रहने के लिए और उनका मास्कोवाला मकान क्रोपॉटकिन के मित्रों तथा भक्तों को दे दिया, जहां उनके पुस्तकालय, चित्रावली तथा अन्य वस्तुएं सुरक्षित रहीं। सोफी १९३० तक जीवित रही और क्रोपॉटकिन के नाम पर स्थापित म्यूजियम की रक्षा करती रही। इसके बाद यह संग्रहालय भी छिन्न-भिन्न कर दिया गया! पर स्वाधीनता का यह अविचल पुजारी युग-युगान्तर तक अमर रहेगा। उसका जीवन [illegible] महान और आदर्शवादिता [illegible] जिन्दगी की [illegible] है।

: २ :

संस्मरण

क्रोपॉटकिन का जन्म मास्को नगर मे सन् १८४२ मे हुआ था। उनके दो बडे भाई थे, निकोलस और एलेकजेडर और एक बडी बहन थी, जिसका नाम था हैलीना। जब क्रोपॉटकिन केवल साढे तीन वर्ष के थे, उनकी माता का देहात होगया। माता की मृत्यु का जिक्र करते हुए उन्होंने लिखा है :

माता की मृत्यु

"मुझे उस समय की कुछ थोडी-सी याद है, जब मैं और मेरा भाई उस कमरे मे, जहा मेरी माता मृत्यु-शय्या पर पडी हुई थी, बुलाये गए थे। एक बडा-सा शयनागार था। खाट पर सफेद बिस्तरा बिछा हुआ था। मेरी मा उसपर लेटी हुई थी। बच्चो के लिए छोटी-छोटी कुर्सिया पडी हुई थी। नजदीक ही मेजें बिछी थी। सुदर काच के बर्तनो मे सफाई के साथ मिठाइया और मुरब्बे रखे हुए थे। यह दृश्य कुछ धुधले रूप मे अब भी मेरी आंखो के सामने है। मरते समय हमारी माता ने मुझे और मेरे भाई को अतिम बार अपनी आंखो के सामने खिलाने के लिए यह मिठाई रखवाई थी। माता को तपेदिक होगई थी। उसकी उमर कुल ३५ वर्ष की थी। उसकी इच्छा थी कि हमेशा के लिए हमसे विदा होने के पहले वह हमें एक बार पुचकार ले और हमें प्रसन्न देखकर स्वय प्रसन्न हो ले। मुझे उसके पीले और पतले चेहरे की याद है। उसके नेत्र बडे-बडे और गहरे भूरे रग के थे। बडे प्रेम के साथ उसने हमारी ओर देखा, हमसे खाने के लिए कहा और फिर बोली—'आओ बेटा, मेरी खाट पर बैठ जाओ।' उसके बाद

उनकी आंखों मे आंसू भर आए। उसे खांसी आगई, और हम दोनों को वहां से चले जाने के लिए कहा गया।

"फिर हम लोग उस बड़े मकान के एक छोटे कमरे मे ले जाये गए। हमारी जर्मन धाय मैडम बर्मन और रूसियन धाय उल्यियाना ने हमसे कहा—'बच्चो, तुम अब सो जाओ।' उनकी आंखों मे आंसू भरे हुए थे, और वे हमारे लिए काली कमीजें सी रही थीं। हमें नींद नहीं आई, किसी अज्ञात भीति से हम डरे हुए थे और अपनी मां के बारे मे उन दोनों धायों की बातचीत को सुन रहे थे, पर हमारी समझ में कुछ नहीं आता था। अपनी खाट पर से हम कूद पड़े और कहने लगे, 'अम्मा कहां है?' 'अम्मा कहां है?' दोनों धायें रोने लगीं, और हमारे घुंघराले बालों पर थपकी देकर कहने लगीं—'बेचारे अनाथ होगए!' फिर रूसियन धाय बोली—'तुम्हारी अम्मा ऊपर आकाश मे चली गई, वहां देव-दूतों के पास।'

'अम्मा आकाश में कैसे चली गईं? क्यों चली गईं?'

"हमारे बाल्यावस्था के कल्पनातीत दिमाग के इन प्रश्नों का कुछ भी उत्तर न मिला।"

प्रिंस क्रोपाटकिन की माता बड़े प्रेमपूर्ण स्वभाव की थी। नौकरों और गुलामों पर उनकी बड़ी कृपादृष्टि रहती थी और वे लोग भी उन्हें बड़े प्रेम और श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। उनके मरने के बाद वे दास लोग क्रोपाटकिन से कहा करते थे—"बड़े होने पर क्या तुम भी अपनी माता की तरह कृपालु होगे? उनकी हम दासों पर बड़ी दया थी।" क्रोपाटकिन ने आगे चल-कर दीन-हीन मनुष्यों के लिए जिस असाधारण त्याग का परिचय दिया, उसके मूल में उनकी माता का प्रेममय स्वभाव ही था।

पिताजी

प्रिंस क्रोपाटकिन ने अपने पिताजी का [illegible] चित्र खींचा है। वह पुराने ढंग के सैनिक-शासन-प्रिय आदमी थे। उनको [illegible] काफी अभिमान था। सैनिक [illegible] प्रिय थे। [illegible]

भी थे, पर युद्ध-क्षेत्र में शायद ही कभी गए हों ! सारा रूसी शासन उन दिनों इसी तरह के आडंबरयुक्त सैनिकों से भरा हुआ था। यदि सैनिकों का कोई गुलाम—गुलामी की प्रथा उन दिनों रूस में काफी प्रचलित थी—बहादुरी का काम करता था तो उसका पुरस्कार उसके स्वामी को मिलता था ! क्रोपॉटकिन लिखते हैं—

"हमारे पिताजी ने सन् १८२८ के रूस-टर्की युद्ध में भाग लिया था, लेकिन जोड़-तोड़ लगाकर आप बराबर चीफ कमांडर के आफिस में ही बने रहे। जब हम लोग कभी उन्हें बहुत खुश देखते तो मौका पाकर उनसे प्रार्थना करते कि आप हमें युद्ध का कुछ हाल सुनाओ, पर वह केवल एक बात बतलाया करते थे कि किस तरह रात के वक्त एक बार सैकड़ों तुर्की कुत्तों ने उनपर तथा उनके स्वामिभक्त नौकर फ्रोल पर आक्रमण किया था। तलवार चलाकर ही वह इन भूखे जानवरों से बच सके। यदि वे तुर्क लोगों के आक्रमण की बात कहते तो हम बच्चों के मन को कुछ सन्तोष भी होता। जब हम जिद करके पूछते कि आपको वीरता के लिए 'सैण्ट एनी' का पदक कैसे मिला तो वह इसका जो उत्तर देते थे, उससे सचमुच बड़ी निराशा होती थी। बात यह हुई थी कि जिस ग्राम में सेनापति और उनके साथी ठहरे हुए थे, उसमें आग लग गई। किसी घर में एक बच्चा पड़ा रह गया और उसकी मा बेचारी करुणोत्पादक ढंग से रो रही थी। फ्रोल आग की लपटों में से घुसकर उस बच्चे को निकाल लाया। चीफ कमांडर ने इस दृश्य को अपनी आंखों से देखा और तुरन्त पिताजी को वीरता का पदक प्रदान किया !

"हम लोग पूछते—'पिताजी, बच्चे को तो फ्रोल ने बचाया था !' पिताजी बड़ी दृढ़ता से जवाब देते—'तो इससे क्या ! फ्रोल नौकर किसका था ? यह सब एक ही बात है।"

ज़ार के पार्षद

जब प्रिंस क्रोपॉटकिन की उमर आठ वर्ष की थी, उनके जीवन में एक उल्लेखनीय घटना हुई। ज़ार की राज्यारोहण की रजत-जयन्ती थी और

उसके लिए मास्को में बडी धूम-धाम के साथ उत्सव मनाया गया था। ज़ार तथा उनके कुटुबी मास्को पधारनेवाले थे। उसीके उपलक्ष में एक बाल-नाच हुआ था। क्रोपॉटकिन अपनी माता के साथ उसमे गए थे। उन्हे फारिस के राजकुमारो के-से वस्त्र पहना दिये गए थे। जार को बालक क्रोपॉटकिन का भोला-भाला चेहरा बडा पसद आया और उसने अपने नौकरो को आज्ञा दी कि उस बच्चे को मेरे पास ले आओ। ज़ार के नौकर क्रोपॉटकिन को लाने के लिए दौडे। क्रोपॉटकिन वहा ले जाये गए। ज़ार को भद्दे मज़ाक करने का बडा शौक था। वह क्रोपॉटकिन का हाथ पकडकर अपनी पुत्र-वधू मेरी एलेक्जेंड्रोवना के पास, जो उन दिनो गर्भवती थी, ले गए और बोले—"मुझे ऐसा बच्चा जन कर देना।" वह बेचारी इस मजाक से लज्जित हो गई। जार के भाई माइकेल ने बालक क्रोपॉटकिन को रुला दिया। उसने क्रोपॉटकिन के मुह पर ऊपर से नीचे हाथ फेरते हुए कहा—"देखो बच्चे, जब तुम अच्छे बालक होते हो, तब सब तुम्हारे साथ ऐसा बर्ताव करते है।" और फिर नीचे से ऊपर की ओर हाथ फेरते हुए क्रोपॉटकिन की नाक को रगडते हुए कहा—"जब तुम बुरे लडके होते हो, तब सब तुम्हारे साथ यो वर्त्ताव करते है।" बहुत कोशिश करने पर भी बालक क्रोपॉटकिन अपने आसू न रोक सका। जो महिलाएं वहा उपस्थित थी उन्होने क्रोपॉटकिन की तरफ ली, उसे पुचकारने लगी, और ज़ार की पुत्र-वधू मेरी एलेक्जेंड्रोवना ने उसे अपनी गोदी में ले लिया। क्रोपॉटकिन उसकी गोद मे ही सो गए। बाल-नाच मे वह शामिल न हुई और वह बालक को गोद मे लिए बैठी रही।

इसके बाद ज़ार ने प्रसन्न होकर क्रोपॉटकिन को अपना पार्षद बना दिया। जार का पार्षद होना उन दिनो अत्यत गौरव की बात समझी जाती थी और यह गौरव विरले ही आदमियो को प्राप्त होता था।

दासों की दुर्दशा

क्रोपॉटकिन ने अपने जीवन-चरित मे रूस के दासो की दुर्दशा का अत्यत हृदय-द्रावक चित्र खीचा है। उनके साथ जानवरो से भी बुरा बर्त्ताव किया

जाता था। छोटे-छोटे अपराधों के लिए उनपर कोड़े लगवाए जाते थे। उनके शादी-ब्याह, बिना उनकी अनुमति के, चाहे जिसके साथ कर दिये जाते थे। बेचारे रोते थे, मना करते थे, विनती करते थे, गिड़गिड़ाते थे, पर सब व्यर्थ। जमींदार लोग यह समझते ही नहीं थे कि उन बेचारों के भी आत्मा है। क्रोपॉटकिन लिखते हैं—

"किसीको इस बात की आशंका भी न होती थी कि बेचारे दासों के हृदय में भी मानुषिक भाव हैं। जब तुर्गनेव ने अपनी गल्प 'मूमू' प्रकाशित की, और ग्रिगोरोविच ने अपने उपन्यासों में दासों की दुर्दशा का वर्णन करके रूसी पाठकों को रुलाया था, उस समय कितने ही रूसी लोग आश्चर्य से पूछते थे कि क्या सचमुच इन दासों के हृदय में भी हमारे तरह के भाव पाये जाते हैं? बड़े-बड़े घराने की जो रूसी स्त्रियां अपनी भावुकता के कारण फ्रांसीसी भाषा के उपन्यासों के नायक-नायिकाओं के वृत्तांतों को पढ़कर आंसू बहाए बिना न रहती थीं, कहती थीं—'अरे, क्या यह रशियन दास हमारी-तुम्हारी तरह ही प्रेम करते हैं? क्या यह बात संभव है?"...

मिलिटरी स्कूल में

क्रोपॉटकिन ने अपने स्कूली जीवन का जो विवरण लिखा है, वह भी बड़ा चित्ताकर्षक है। सीधे-सादे शिक्षकों को विद्यार्थी किस तरह तंग किया करते हैं, इसका बड़ा मनोरंजक वृत्तांत है। वह लिखते हैं—"एक जर्मन यहूदी मि. एबर्ट थे, वह विद्यार्थियों को लिखना सिखाया करते थे। लड़के उन्हें इतना अधिक तंग किया करते थे कि अगर उनकी निर्धनता उन्हें वहां रहने के लिए बाध्य न करती तो वह कभी के स्कूल छोड़कर चले गए होते। बड़े दर्जों के लड़के उन्हें खास तौर पर तंग करते थे, पर उन्होंने एक समझौता कर लिया था—'एक दिन में सिर्फ एक ही मजाक होना चाहिए, इससे ज्यादा नहीं।' समझौते की इस शर्त का प्रायः लड़कों की ओर से उल्लंघन किया जाता था। एक दिन पिछली बेंच पर बैठनेवाले एक लड़के ने खड़िया और स्याही में भिगोकर एक स्पंज इन शिक्षक महोदय को निशाना बनाकर मारा।

वह उनके कंधे पर लगा और स्याही के छींटे छिटककर उनके मुह और सफेद कमीज पर फैल गए। हम लोगो को यह उम्मीद थी कि एवर्ट महोदय अपने क्लास को छोडकर तुरन्त ही इन्स्पेक्टर से इस बात की शिकायत करेंगे, पर उन्होने ऐसा नही किया। अपना रुमाल जेब से निकालकर उन्होंने अपना चेहरा पोछा और कहा—'भाई, एक मजाक हर रोज का नियम है, सो हो चुका, इससे ज्यादा न होना चाहिए।'

"फिर दबी जबान से यह कहते हुए कि हमारी कमीज खराब होगई, वह किसी लडके की नोटबुक शुद्ध करते रहे। हम सबको बहुत शर्मिंदा होना पडा। उनकी सहनशीलता से लडकों के विचार उनके पक्ष मे होगए। हम लोगो ने उस साथी को फटकारते हुए कहा—'मूर्ख! यह तुमने क्या किया?' किसी लडके ने कहा—"तुम्हे शर्म आनी चाहिए, वह बेचारे गरीब आदमी है और तुमने उनकी कमीज खराब कर दी।" अपराधी लडका शिक्षक के पास माफी मागने गया। एवर्ट ने खेदयुक्त स्वर मे केवल इतना कहा—"भाई, सबको सीखना चाहिए, सीखना।" क्लास मे सर्वत्र शान्ति छा गई। दूसरे सबक के दिन हम सबने बहुत ही बढिया ढग से लिखा और एवर्ट साहब के पास अपनी नोटबुक ले गये। यह देखकर उनका चेहरा खिल गया और दिनभर बडे खुश रहे। उनकी यह सहनशीलता मेरे हृदय पर अकित होगई और मै उसे आजतक नही भुला सका। उन्होने जो सबक मुझे सिखाया, उसके लिए मै उनका कृतज्ञ हू।"

हस्तलिखित क्रांतिकारी पत्र का संपादन

सन् १८५९ या १८६० मे क्रोपॉटकिन ने स्कूल मे ही एक हस्तलिखित क्रातिकारी पत्र निकालना शुरू कर दिया था। प्रथम अक को आपने तीन प्रतियों की और अपने से ऊचे दर्जे के विद्यार्थियो की डेस्क मे रख दी और साथ ही यह भी लिख दिया कि इस पत्र के विषय मे अपनी सम्मति एक कागज पर लिखकर हमारे स्कूल की घडी के पीछे रख आना। दो लडको ने उसे पढा, और अपनी सम्मति लिखकर रख आए। दूसरे दिन क्रोपॉटकिन बडी उत्कठा से

साथ वहा गए, तो उन सम्मतियो को रखा पाया। उसमे लिखा था—"हम लोग आपकी बातो से पूर्णतया सहमत है, पर आप ज्यादा खतरे में न पडें।" बहुत उत्साहित होकर आपने अपने पत्र का द्वितीय अक निकाला और फिर उसी तरह उन विद्यार्थियो की डेस्क मे उनकी प्रतिया रख दी। इस अक में बड़े जोरो के साथ स्वाधीनता का पक्ष-समर्थन किया गया था और इस बात की प्रेरणा की गई थी कि सबको मिलकर देश को स्वाधीन करने का प्रयत्न करना चाहिए। इस बार उन विद्यार्थियों ने अपनी सम्मति लिखकर घडी के पीछे नही रखी, बल्कि वे खुद ही क्रोपॉटकिन के पास आए और बोले—"हमें यह दृढ विश्वास है कि तुम्ही इस पत्र का सपादन करते हो। हम लोग आपसे इस विषय में बातचीत करना चाहते है। हम आपसे बिल्कुल सहमत है और हम आपसे यह कहने आए है कि हम और आप मित्र है। अब आपको अपने पत्र के निकालने की आवश्यकता नही, क्योकि स्कूलभर मे हम लोगो के विचारो के केवल दो लडके और है। यदि भेद खुल गया तो हम सबकी आफत आ जायगी। हम लोगो को चाहिए कि एक गुट बना ले और यथावकाश इन विषयो पर बातचीत किया करें।" क्रोपाटकिन ने उन दोनो विद्यार्थियो से हाथ मिलाया और एक मित्र-मडली स्थापित होगई। ये तीनो मित्र आपस में प्राय देश की स्थिति पर बातचीत किया करते थे।

क्रोपॉटकिन के दिमाग पर तत्कालीन रूसी साहित्य-सेवियो की रचनाओ का बड़ा प्रभाव पड़ा था। उन दिनो तुर्गनेव, टॉल्सटाय, हर्जिन, बाकूनिन, डोस्टोवस्की इत्यादि के ग्रथ प्रकाशित हो रहे थे, और वास्तव मे सन् १८५७ और १८६१ के बीच का समय रूसी साहित्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण कहा जा सकता है। रूस में उन दिनो राजनैतिक विषयो पर तो कोई पुस्तक खुल्लम-खुल्ला लिखी नही जा सकती थी, इसलिए लोग लुक-छिपकर उपन्यासों और प्रहसनो के रूप मे राजनैतिक विचारो का प्रचार किया करते थे। ऊपर से तो यह साहित्य बिल्कुल मामूली-सा जचता था, पर था वह वास्तव में क्रातिकारी और उसकी लहरे उन एकान्त स्थानो तक भी, जहा उनके जाने की कुछ भी गुंजाइश नही थी, पहुच जाती थी। यहा क्रोपॉटकिन का

घोर राजभक्त मिलिटरी कालेज और कहा इस प्रकार का साहित्य ! पर क्रांतिकारी विचारों की लहरों को कोई दीवार नहीं रोक सकती और वह सभी विघ्न-बाधाओं को पार करती हुई स्वाधीनता-प्रिय पुरुषों के हृदय तक पहुच ही जाती है, क्योंकि वे हृदय से निकली हुई होती हैं।

नियुक्ति

जब क्रोपॉटकिन अपनी शिक्षा समाप्त कर चुके, तो उनकी नियुक्ति का समय आया। इन लोगों को, जो फौज में जाकर अफसर बनते थे, यह अधिकार था कि वे अपनी-अपनी इच्छानुसार अपनी रेजीमेंट चुन लेते थे। कोई तोपखाने में जाता था तो कोई कज्जाक सेना में सम्मिलित होता था। क्रोपॉटकिन की इच्छा सैनिक बनने की बिल्कुल नहीं थी। वह कालेज में अध्ययन करना चाहते थे, पर उनके पिता इसके सर्वथा विरुद्ध थे, इसलिए वह लाचार थे। क्रोपॉटकिन के अन्य साथियों ने भिन्न-भिन्न रेजीमेंटों में अफसर बनने का विचार किया, पर क्रोपॉटकिन ने साइबेरिया की कज्जाक-सेना में अफसर बनने का निश्चय किया। इस बात को सुनकर क्रोपॉटकिन के साथी दंग रह गए। कोई-कोई कहने लगे—"साइबेरिया! अरे भाई, मजाक तो नहीं कर रहे! सचमुच तुम बड़े दिल्लगीबाज हो! भला उस मनहूस मुल्क में जाकर क्या करोगे?" पर क्रोपॉटकिन ने मजाक नहीं किया था। उन्होंने भूगोल का अत्यन्त परिश्रम के साथ अध्ययन किया था, और उनकी इच्छा थी कि साइबेरिया पहुचकर आमूर नदी के विषय में कुछ वैज्ञानिक अनुसंधान करें। इसके साथ ही उन्हें इस बात की आशा थी कि साइबेरिया पहुचकर वह उन राजनैतिक सुधारों को, जो शीघ्र ही होनेवाले थे, कार्य रूप में परिणत करने का अवसर प्राप्त करेंगे। साइबेरिया जाना कोई पसन्द नहीं करता था, और इसलिए क्रोपॉटकिन ने सोचा कि वहां इच्छानुसार कार्य करने के लिए विस्तृत क्षेत्र मिलेगा।

ज़ार से बातचीत

तमाम युवक अफसर अपने-अपने स्थानों को जाने से पहले ज़ार से मिलने

के लिए गए। क्रोपॉटकिन को भी जाना पडा। आमूर के कज्जाको की रेजीमेंट उमर मे बहुत छोटी होने के कारण क्रोपॉटकिन को अफसरो की पक्ति मे सबसे नीचे खडा होना पडा। जार ने क्रोपॉटकिन को देखा और कहा—"आखिर तुमने साइबेरिया जाना तय कर ही लिया! क्या तुम्हारे पिताजी राजी हो गए?" क्रोपॉटकिन ने कहा—"जीहा, उन्होने अनुमति दे दी।" फिर जार ने पूछा—"क्या तुमको इतनी दूर जाने मे डर नही लगता?" क्रोपॉटकिन ने बडे उत्साहपूर्वक उत्तर दिया—"नही, मै तो काम करना चाहता हू। नए सुधारो के बाद साइबेरिया में बहुत-कुछ काम करने को मिलेगा।" जार ने सीधे क्रोपॉटकिन की ओर देखा, कुछ चिंता की झलक उसके चेहरे पर प्रकट हुई, और फिर वह बोला—"अच्छा, जाओ, आदमी हर जगह उपयोगी सिद्ध हो सकता है।" इसके बाद जार के चेहरे पर बडी थकावट के-से चिह्न प्रतीत हुए। क्रोपॉटकिन लिखते हैं—"मै उसी समय समझ गया कि यह आदमी तो बीत चुका, इससे सुधार इत्यादि कुछ नही होने के। यह तो फिर अत्याचारपूर्ण नीति का प्रयोग किए बिना न रहेगा।" हुआ भी ऐसा ही, जेलखाने देशभक्तो से भरे जाने लगे और चारो ओर जारशाही का आतंक छा गया।

साइबेरिया में

साइबेरिया में क्रोपॉटकिन को पाच वर्ष तक रहना पडा। यहा उन्हे अनेक अनुभव हुए। क्रोपॉटकिन को अभी यह विश्वास था कि जार की सरकार सुधारो के लिए सचमुच उत्सुक है और उन्होने अत्यत परिश्रम के साथ साइबेरिया में देश-निकाले की प्रथा के सुधार और म्युनिसिपल सुधार के लिए अपनी योजनाए तैयार की, परन्तु ये योजनाए कागजो मे लिखी हुई जहा-की-तहा पडी रही और उनका कोई उपयोग नही हुआ! जारशाही के शासन का एक दृष्टांत सुन लीजिए। साइबेरिया के किसी जिले मे एक अत्यत धूर्त अफसर था। वह किसानो को खूब लूटा करता था और डटकर रिश्वत लिया करता था। वह उनके कोडे भी लगवाया करता था, यहातक कि स्त्रिया भी उसके अत्याचार से नही बची थी। उनके भी कोडे लगते थे। इस अफसर को

धूर्त्तताओं की खबर प्रांत के गवर्नर के कानों तक पहुंच चुकी थी, पर वे कुछ भी नहीं कर सकते थे, क्योंकि सेंटपीटर्सबर्ग में इस अफसर के मित्रों अथवा संबंधियों का जोर था, और इसलिए वह निश्चिन्त होकर मन-मानी किया करता था। प्रांत के गवर्नर जब उसकी शिकायतें सुनते-सुनते तंग आगए, तो उन्होंने क्रोपॉटकिन को इस बात के लिए नियुक्त किया कि वह इस अफसर की कार्रवाइयों की जांच करे। यह काम आसान नहीं था, क्योंकि कोई भी किसान उस दुष्ट अफसर के खिलाफ गवाही देने को तैयार नहीं था। रूसी भाषा में एक कहावत है—'परमात्मा तो बहुत दूर रहता है, पर तुम्हारा अफसर तुम्हारे निकट का पड़ोसी है', इसी डर से वे लोग अपने जिले के अफसर के विरुद्ध साक्षी नहीं दे सकते थे, यहांतक कि वह औरत भी जिसके कोड़े लगवाये गये थे, अपना लिखित बयान देने को तैयार नहीं थी। जब पन्द्रह दिन रहकर क्रोपॉटकिन वहां के निवासियों के विश्वासपात्र बन गए, तब कहीं उन्होंने अपनी दुख-गाथा सुनाई। इस अफसर के विरुद्ध इतने प्रबल प्रमाण मिले कि वह आखिरकार बर्खास्त कर दिया गया, पर कुछ महीने बाद क्या हुआ कि वही अफसर किसी दूसरे प्रांत में उच्चतर पद पर भेज दिया गया। वहां भी उसने लूट-मार जारी रखी। दो-चार वर्ष बाद ही वह धनवान होकर सेंटपीटर्सबर्ग को लौट गया और वह फिर समाचार-पत्रों में देश-भक्ति पूर्ण लेख लिखने लगा।

फिर विद्यार्थी-जीवन

सैनिक जीवन क्रोपॉटकिन के स्वभाव के बिल्कुल प्रतिकूल था और सन् १८६७ में वह अपनी नौकरी से त्यागपत्र देकर सेंटपीटर्सबर्ग आगए। जो पांच वर्ष उन्हें साइबेरिया में बिताने पड़े, उनसे उन्हें बहुत-कुछ अनुभव होगया। उन्हें जारशाही की सुधार-प्रवृत्ति का खोखलापन अच्छी तरह मालूम होगया, और देश-भक्तों के कष्टमय जीवन से भी वह भली-भांति परिचित हो गए। वहां रहते हुए उन्हें आमूर नदी के विषय में अनुसंधान भी करना पड़ा, इसलिए उन्हें अपने देश के उस भाग का भौगोलिक ज्ञान भी होगया। अब

विश्वविद्यालय में आकर क्रोपॉटकिन ने अपना सारा समय भूगोल के लिए लगाना प्रारम्भ कर दिया। उत्तरी एशिया के जो मानचित्र उन दिनों छापे जाते थे, उनमें पहाड़ इत्यादि के निशान यूं ही अंदाज से और गलत लगा दिये गए थे। क्रोपॉटकिन ने कई वर्ष तक परिश्रम करके इनका ठीक-ठीक पता लगाया। बड़े-बड़े भौगोलिक और वैज्ञानिक जिस समस्या को हल नहीं कर पाए थे, उसे क्रोपॉटकिन ने हल कर दिया। विज्ञान-संसार में उनकी कीर्ति फैल गई। वैज्ञानिक अनुसंधान करने के बाद वैज्ञानिक को जो आनंद होता है, उसका वर्णन करते हुए क्रोपॉटकिन ने लिखा है :

"जिस किसीने अपने जीवन में एक बार भी उस आनन्द का अनुभव किया है, जो वैज्ञानिक कृति के सफल होने के बाद आता है, वह उस आनन्द को कदापि भूल नहीं सकता, और वह बार-बार इसी बात की इच्छा करेगा कि वह आनंद मुझे जीवन में अनेक बार मिले। पर एक बात से उसे दुःख होगा, वह यह कि इस तरह का आनंद कितने अल्प-संख्यक आदमियों के भाग्य में बदा है। यदि साधारण जनता को अवकाश मिलता और विज्ञान की बातें उन्हें समझा दी जातीं तो थोड़े-बहुत अंश में वे भी इस आनंद का कुछ अनुभव कर लेते, पर दुर्भाग्यवश यह ज्ञान और अवकाश केवल मुट्ठी-भर आदमियों तक ही परिमित रहता है।"

जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन

अब क्रोपॉटकिन के जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन का समय आता है। भौगोलिक अनुसंधान करने के लिए वह फिनलैंड भेजे गए थे। वहां जाकर उन्होंने उस देश के दीन-हीन किसानों की हालत देखी। उससे उनका हृदय द्रवित हो गया और वह सोचने लगे—"ये बेचारे मेहनत करते-करते मरे जाते हैं, फिर भी इन्हें पेट-भर भोजन नहीं मिलता। अपने वैज्ञानिक अनुसंधान करके मैं इन्हें यह बतलाऊं भी कि तुम अमुक जमीन में अमुक प्रकार का खाद दो और फसल काटने के लिए फलां अमरीकन मशीन मंगाओ, तो इससे क्या फायदा होगा? सरकारी टैक्स बराबर बढ़ता जाता है, और टैक्स देने के बाद

पेट-पूर्ति के लिए भी काफी अन्न नहीं बचता। शरीर ढकने के लिए कपडे भी उसके पास नहीं। भला वह मेरे वैज्ञानिक अनुसधानों को और सलाहों को लेकर क्या चाटेगा ? इस किसान को मेरी वैज्ञानिक सलाह की जरूरत नहीं, उसे जरूरत है मेरी, यानी मैं उसके पास रहूं और अपनी जमीन का मालिक बनने में उसकी मदद करूं। जब उसको भरपेट खाना मिलेगा, तब वह मेरी किताब भी पढ लेगा और उससे कुछ लाभ भी उठा लेगा, अभी नहीं। विज्ञान बडी अच्छी चीज है। मैंने वैज्ञानिक अनुसधानों के आनद का अनुभव किया है और उसका मूल्य मैं भली-भांति जानता हू, पर मुझे क्या अधिकार है कि मैं अकेले ही उन सर्वोच्च आनदों का मजा लूटूं, जब मेरे चारों ओर एक-एक रोटी के टुकडे के लिए भयकर जीवन-सग्राम चल रहा है ? जो लोग गेहू उगाकर भी इतना नहीं बचा सकते कि खुद उनके बच्चे गेहू की रोटी खा सके, तो मुझे क्या अधिकार है कि मैं उनके मुह की रोटी के टुकडे छीनकर स्वय उच्च भावनाओं के ससार में विचरण करूं ? मनुष्य-जाति जो कुछ उत्पन्न करती है, उसकी मिकदार अभी बहुत थोडी है, इसलिए यदि मैं मजे में रहता हुआ वैज्ञानिक अनुसधानों में मस्त रहू, तो उसका खर्च भी तो किसी गरीब के मुह की रोटी छीनकर ही आवेगा। ज्ञान बडी भारी चीज है, मैं भी यह मानता हू। इससे इन्कार कौन करता है ? मनुष्य को ज्ञान बढाना चाहिए। बहुत ठीक। पर सवाल तो यह है कि जितना ज्ञान प्राप्त हो गया है, जितने वैज्ञानिक अनुसधान हो चुके हैं, क्या वे सर्वसाधारण तक पहुच गए ? क्या आम लोग उन्हें जान गए ? मेरी समझ में जितने ज्ञान का पता लग गया है, वह बहुत काफी है। यदि वह ज्ञान सर्वसाधारण की सपत्ति बन जाय, तो फिर विज्ञान की कितनी जबर्दस्त उन्नति हो ? तब उत्पत्ति, आविष्कार और सामाजिक कार्यों की गति, इतनी तीव्र हो जायगी कि अभी हम उसका अदाज भी नहीं लगा सकते। साधारण जनता ज्ञान प्राप्त करना चाहती है। उसकी हार्दिक इच्छा है कि उसे ज्ञान मिले। उसमें ज्ञान प्राप्त करने की सामर्थ्य भी है, पर उसे ज्ञान देता कौन है ? उसके पास इतना अवकाश कहा है ?"

क्रोपॉटकिन लिखते हैं—"मेरे विचार उसी दिशा में काम करने लगे। मैंने कहा, बस, मैं तो अब इसी तरह के दीन-हीन आदमियों के लिए काम करूंगा। जो आदमी वैज्ञानिक अनुसंधान करने और साधारण जनता का ज्ञान बढ़ाने तथा उसकी उन्नति करने का दम भरते हैं, वे खुद कभी साधारण जनता के पास भी नहीं फटकते! कैसी विडंबना है! उनके विचार और उनका वास्तविक जीवन, कितने परस्पर-विरोधी हैं! जब मेरे मन में इस प्रकार के विचार चक्कर खा रहे थे, तभी रूसी भौगोलिक सोसायटी का तार आया, "क्या आप कृपा कर हमारी सोसायटी के सेक्रेटरी का पद स्वीकार करेंगे?" मैंने जवाब दिया—"नहीं।"

रूस की तात्कालीन दशा

प्रिंस क्रोपॉटकिन ने रूस की उस समय की हालत का जो चित्र खींचा है, वह भारत की पराधीनता के दिनों की स्थिति से बिल्कुल मिलता-जुलता है। नवयुवकों को ऐसी शिक्षा दी जाती थी जिससे उनमें विचार-शक्ति उत्पन्न ही न हो। जिन लड़कों में स्वतंत्र विचार-शक्ति की थोड़ी-सी मात्रा पाई जाती थी, वे निकाल बाहर किए जाते थे। लड़कों को औद्योगिक शिक्षा की जरूरत थी और विद्यालयों में लैटिन तथा ग्रीक भाषाएं पढ़ाई जाती थीं! शिक्षा का विस्तार करने और उसे उपयोगी बनाने के बजाय उसे परिस्थिति के बिल्कुल विपरीत बनाकर निरर्थक कर दिया गया था। नवयुवकों के हृदय में निराशा घर कर रही थी। किसान भारी टैक्सों के बोझ से पिसे जाते थे। सुशिक्षित समाज की दशा बड़ी विचित्र थी। उनके जीवन में भोग-विलास ने घर कर लिया था और राजनैतिक मामलों के विषय में बातचीत करते हुए भी वे डरते थे! साहित्यिक सभाओं के आदमी और भी दब्बू बन गए थे। जब कभी प्रिंस क्रोपॉटकिन या उनके बड़े भाई राजनैतिक चर्चा छेड़ते, तो उन संस्थाओं के सदस्य उनकी बात बीच में ही काटकर नाटक और रंगमंच की बातें करने लगते!

अनेक और अपनेको अनुभवी समझने आदमी नवयुवकों को उपदेश

देते थे—"हाथ-पाँव बचाए और मर्जी को टरकाए" की नीति से काम लो। पत्थर की दीवार से सिर मारने से क्या फायदा है? धीरज धरो, यह वक्त भी निकल जायगा, इत्यादि।" पुलिस के अत्याचार बराबर बढ़ रहे थे। उन्नत विचारों के नवयुवक को यही खतरा रहता था कि वह सब पकड़ लिया जाय। किसी राजनैतिक अपराधी से सहानुभूति प्रकट करना भी एक भयंकर अपराध समझा जाता था। अगर किसीके यहाँ तलाशी में कोई मामूली चिट्ठी मिल गई, जिसका अट-बंड कुछ दूसरा अर्थ भी निकलता हो, तो उसका जेल जाना निश्चित था। कितने ही नवयुवक इसलिए जेल भेज दिये जाते थे कि उनके विचार 'खतरनाक है।' 'राजनैतिक कारणों से' कितनी ही गिरफ्तारियाँ होती थी, और राजनैतिक कारण का अर्थ चाहे जो कुछ भी समझ लिया जाता था। सेंटपीटर्स और सेंटपाल के भयंकर जेलखानों में सैकड़ों नवयुवक सड़ रहे थे, कितनों ही को देश-निकाला देकर साइबेरिया भेज दिया गया था और कितनों ही को फाँसी पर भी चढ़ा दिया गया था। कुछ वर्षों पहले जिनके राजनैतिक विचार उन्नत भी थे, वे भी अब पुलिस से इतने डर गए थे कि नवयुवकों से मिलते हुए भी उन्हें संकोच होता था। तुर्गनेव ने अपने सुप्रसिद्ध उपन्यास 'पिता और पुत्र' में बड़ी खूबी के साथ यह दिखलाया है कि उस समय के पुराने विचारों के डरपोक पिताओं और नए जमाने के साहसी नवयुवकों के बीच में एक खाई-सी खुदी हुई थी, उनके विचारों में बड़ा अंतर था। पिताओं और पुत्रों के बीच में अंतर होने की बात तो रही अलग, पंद्रह-बीस वर्ष के नवयुवकों तथा तीस वर्ष से ऊपर-वालों के विचारों में बड़ा फर्क पड़ गया था। उस समय रूस के नवयुवक बड़ी विचित्र दशा में थे। पुराने खयाल के पिताओं से तो उन्हें झगड़ा करना ही पड़ता था, अपने से आठ-दस वर्ष अधिक उम्रवाले बड़े भाइयों से भी उनका प्रबल मतभेद था। नवयुवकों के विचार साम्यवाद की ओर झुक रहे थे और वे पैंतीस वर्षवाले आदमी इन युवकों का साथ राजनैतिक मामलों में भी देने से डरते थे। फिर जो गॉटविन लिखते है

"मेरे मन में प्रश्न होता है कि क्या इतिहास में किसी देश के नवयुवकों

को इतने भारी शत्रु का मुकाबला ऐसी भयंकर स्थिति मे करना पडा है ? इन नवयुवको को इनके पिताओ और बडे भाइयो तक ने त्याग दिया था। इन बेचारो का अपराध क्या था ? बस, यही कि उन्होंने अपने पिताओ और अग्रेजो के विचारो को हृदयगम करके उन्हे अपने जीवन मे चरितार्थ करने का प्रयत्न किया था। क्या इससे भी कठिन तथा दु खजनक परिस्थिति में कही किसी देश के नवयुवको को स्वाधीनता की लडाई लडनी पड़ी है ?"

रूसी स्त्रियों में जागृति

जिन दिनों रूस के नवयुवकों के हृदय मे क्रान्तिकारी भाव उत्पन्न हो रहे थे, उन्ही दिनों रूसी लडकिया भी जागृत होकर उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए आदोलन कर रही थी। प्रिन क्रोपॉटकिन लिखते है :

"मेरी भाभी स्त्रियो के विद्यालय से लौटकर मुझे सुनाया करती थी कि आज उस मामले पर युवतियों मे बडी गरमागरम बहस हुई, कल इस विषय पर विचार होगा। कभी स्त्रियो के लिए विश्वविद्यालय खोलने की स्कीम सोची जाती थी, तो कभी उनके लिए उच्चकोटि की डाक्टरनी बनाने के उपायों पर विचार किया जाता था। स्त्रियो को कैसे शिक्षा दी जानी चाहिए, इस विषय पर वाद-विवाद हुआ करते थे और सैकडो स्त्रिया उन बहस-मुबाहसों में बडी गभीरता और बडे उत्साह के साथ भाग लिया करती थीं। गरीब लडकियो की मदद के लिए इन स्त्रियो ने अनुवादक-मडल, छापेखाने, जिल्द-बदी इत्यादि काम खोल रखे थे। सैटपीटर्सबर्ग मे अनेक युवतिया इसी आशा से आकर इकट्ठी होती थी कि उन्हे किसी प्रकार उच्च शिक्षा मिल जाय। गवर्नमेंट रूसी लडकियो को विश्व-विद्यालय की शिक्षा देने की घोर विरोधी थी, इसलिए ये बेचारी अपना प्रबध आप ही करती थी। गवर्नमेंट कहती थी कि हाई स्कूल की परीक्षा पास लडकियो मे इतनी योग्यता नही होती कि वे विश्वविद्यालय की पढाई को समझ सके, इसपर लडकिया कहती, "तो हमारे लिए प्रारभिक कक्षाओ का प्रबध कर दो, जहा पढकर हम विश्व-विद्यालयों

में दाखिल होने की तैयारी कर सकें, पर गवर्नमेंट इस बात पर राजी नही थी। प्राइवेट तौर पर बडे-बड़े अध्यापकों के वे व्याख्यान कराती थी। विश्व-विद्यालय के कितने ही अध्यापक, जो उनके साथ सहानुभूति रखते थे, बिना एक पैसा लिये उन्हे पढा दिया करते थे। वे कहते थे कि अगर तुमने पैसे देने की बात कही तो हम इसमें अपना अपमान समझेगे। यद्यपि ये अध्यापक स्वय गरीब थे, तथापि अपनी बहनो के अदम्य उत्साह को देखकर उनका हृदय द्रवित होगया था। भौतिक विज्ञान के अध्ययन के लिए यूनीवर्सिटी के अध्यापक विद्यार्थियो को साथ लेकर यात्राओ पर बाहर जाया करते थे। इन यात्रियों में अधिकांश स्त्रिया ही होती थी। धायों के काम के लिए जो पाठ्य-क्रम नियत किया गया था, उस पाठ्यक्रम से वे सतुष्ट नही थी और अध्यापकों पर जोर डालकर उन्होने उस पाठ्यक्रम को और भी बढवा लिया। उनकी ज्ञान-पिपासा इतनी बढी हुई थी कि वे जहा-कही और जब-कभी मौका मिलता, अपने समाज के लिए उच्च शिक्षा का मार्ग प्रशस्त करने की कोशिश करती। यदि उन्हे पता लग जाता कि अमुक अध्यापक महोदय इतवार के दिन अपनी प्रयोगशाला में लडकियो को काम करने की इजाजत दे देंगे तो बस फिर क्या था, वे उसके पास दौड जाती और इस अवसर से लाभ उठाती। यद्यपि जार का मन्त्रिमडल स्त्रियो को उच्च शिक्षा देने का घोर विरोधी था, तथापि उन लडकियो के उत्साह का दमन करना उसके लिए भी आसान नही था। भला भावी माताओ को शिक्षा-पद्धति सीखने से कौन रोक सकता था? उन्होने 'शिक्षण विद्यालय' खोल ही डाले। अब यह सवाल हुआ कि वनस्पति-शास्त्र तथा गणित की शिक्षा-पद्धति किस प्रकार सिखलाई जाय? इसके लिए कोरमकोर सिद्धातो से तो काम चल नहीं सकता था। इसके लिए आवश्यकता थी, इन विषयो की व्यावहारिक शिक्षा की। फलतः इन विद्यालयों में वनस्पति-शास्त्र तथा गणित की भी उच्चकोटि की शिक्षा का प्रबन्ध करना पडा। पाठ्यक्रम में शीघ्र ही इन विषयों को भी स्थान दिया गया। बस, विश्वविद्यालय में प्रवेश करने के लिए एक रास्ता निकल आया। इस प्रकार धीरे-धीरे ये अपनी शिक्षा का मार्ग प्रशस्त करने लगीं।

क्रोपॉटकिन ने आगे चलकर लिखा है कि कितनी ही रूसी लडकियां जर्मनी तथा स्विटजरलैंड में जाकर उच्च शिक्षा प्राप्त करने लगी। उन्होने कानून तथा इतिहास पढने के लिए हीडलबर्ग के लिए प्रस्थान किया, गणित पढने के लिए वे बर्लिन को चल पडी और लगभग सौ लड़कियां ज्यूरिच में औद्योगिक शिक्षा प्राप्त करती थी। जार को यह बात बहुत नापसंद थी कि स्त्रियां उच्च शिक्षा प्राप्त करें। जब कभी जार को कोई लडकी चश्मा पहने हुए दीख पडती, तो वह कांपने लगता था। उसके मन में यही आशंका होती थी कि कहीं यह लडकी क्रांतिकारी दल की न हो। सरकारी पुलिस उच्च शिक्षा-प्राप्त लडकियों की बड़ी विरोधी थी और वह उनके विरुद्ध अधिकारियो के कान भरा करती थी, पर इतने पर भी स्त्रियो ने गवर्नमेंट की मुखालफत में अपने लिए कई शिक्षण-शालाए खोल दी। कितनी ही लड-कियां जब विदेशो से डाक्टरी परीक्षा पास करके लौटी, तो उन्होंने अपने निजी खर्च से डाक्टरी स्कूल खोले और गवर्नमेंट को इस बात के लिए मजबूर किया कि वह उनके मार्ग में कोई रुकावट न डाले। अब जारशाही के सिर पर एक फिक्र और सवार थी, वह यह कि विदेश में जाकर ये लडकिया क्रांतिकारियो के संसर्ग में आती हैं और फिर उनके द्वारा रूस में क्रांतिकारी विचारों का प्रचार होता है। इनको विदेश जाने से कैसे रोका जाय? ज्यूरिच मे जो लड-कियां शिक्षा प्राप्त कर रही थी, क्रांतिकारियो के संसर्ग से बचाने के लिए बुला ली गई। तब उन्होंने आंदोलन करना शुरू किया कि देश में ही स्त्रियों की उच्च शिक्षा के लिए विश्वविद्यालय हो, तो हम क्यों विदेश जाय? आखिर तंग आकर गवर्नमेंट को स्त्रियो की शिक्षा के लिए चार विश्वविद्यालय खोलने ही पडे। स्त्रियो के मेडिकल कालेज के मार्ग में जो-जो बाधाएं गवर्नमेंट की ओर से की गई, उनका वर्णन करने की आवश्यकता नही, पर फिर भी ये स्त्रिया हतोत्साह न हुई और बराबर उन्होंने अपनी पढाई जारी रखी। सन् १८९१ तक लगभग सात सौ स्त्रिया रूस मे परीक्षा पास करके डाक्टरी करने लगी थी।

प्रिंस क्रोपॉटकिन इन स्त्रियों की आश्चर्यजनक सफलता के विषय में

लिखते हैं—"इस सफलता का मुख्य कारण यह था कि जो स्त्रियां इस आंदोलन में मुखिया बनकर भाग ले रही थीं, जो इसकी आत्मा तथा प्राण थीं, वे अपने स्वार्थ के लिए नहीं लड़ रही थीं। वे उन स्त्रियों में से नहीं थीं, जो समाज में केवल अपना दर्जा ऊंचा करने के लिए लड़ती-झगड़ती हैं। सरकारी उच्च पदों की लालसा उनके मन में न थी। उनमें से अधिकांश की सहानुभूति साधारण जनता के साथ थी। फैक्टरियों में काम करनेवाली लड़कियों के साथ उन्होंने मैत्री स्थापित कर ली थी और उनके हितों के लिए वे लोभी मालिकों तथा लालची पूंजीपतियों से लड़ती थीं। ग्राम्य पाठशालाओं में शिक्षिका बनने की ओर उनकी विशेष रुचि थी। जिन अधिकारों के लिए वे स्त्रियां लड़ रही थीं, वे केवल कुछ इने-गिने व्यक्तियों के ही अधिकार नहीं थे। वे सिर्फ यही नहीं चाहती थीं कि हमको उच्च शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार मिल जाय, उनका उद्देश्य इससे कहीं उच्च था, यानी वे सर्वसाधारण की सेवा के लिए, दीन-हीन स्त्री समाज के लिए, अधिक उपयोगी सेविका बनना चाहती थीं। उनकी सफलता की असली कुंजी यही थी।"

जो लोग आज भारतवर्ष में 'क्रांति-क्रांति' चिल्लाते हैं, उन्हें क्रोपाटकिन के उपर्युक्त शब्दों पर ध्यान देना चाहिए। जबतक भारतीय स्त्री-समाज में इस प्रकार की निःस्वार्थ सेवा के भाव उत्पन्न नहीं होते, तबतक वास्तविक क्रांति होना संभव नहीं।

पिता की मृत्यु

सन् १८७१ में क्रोपाटकिन के पिता की मृत्यु होगई। वह पुराने खयाल के आदमी थे और उसी पुरानी शान-शौकत से रहना पसंद करते थे। पर पिछले कुछ वर्षों से उनके आस-पास की स्थिति में बहुत अंतर आगया था। अब दासत्व की प्रथा बंद होगई थी। जिनके गुलाम थे, उन्हें रुपया दे दिया गया था और गुलाम मुक्त कर दिये गए थे। पर रुपया इन लोगों ने थोड़े दिनों में ही भोग-विलासमय जीवन में नष्ट कर दिया। अब इनकी जमीन तथा जायदादों पर व्यापारियों का अधिकार होगया। व्यापार-

कार मास्को छोड़कर इन लोगों को ग्रामों अथवा छोटे-छोटे कस्बों में चले जाना पड़ा। मास्को के उस प्रसिद्ध मुहल्ले में, जहां पहले धनाढ्य-ही-धनाढ्य रहते थे, अब दूसरी तरह के आदमी आकर बस गए। क्रोपॉटकिन के रिश्तेदारों के बीस कुटुंब पहले इसी मुहल्ले में रहते थे, पर उनमें से अब केवल दो कुटुंब ही बाकी बचे थे, शेष इधर-उधर चले गए। ये दो कुटुंब भी समय की गति से प्रभावित हुए बिना न रहे। इन कुटुंबों से क्रोपॉटकिन के पिता बड़ी घृणा करते थे, क्योंकि इन कुटुंबों में माताएं अपनी लड़कियों के साथ साधारण जनता के लिए विद्यालय और स्त्रियों के लिए विश्वविद्यालय इत्यादि नवीन विषयों पर बातचीत करती थीं। प्रिंस क्रोपॉटकिन के पिता इस बात से अत्यंत असंतुष्ट थे कि उनके दोनों लड़के ऐलेक्जेंडर और क्रोपॉटकिन ने उनकी आज्ञा का उल्लंघन किया था। वह चाहते थे कि हमारे लड़के सैनिक जीवन व्यतीत कर उसी पुरानी शान से रहें, पर यह बात दोनों को नापसंद थी। जब क्रोपॉटकिन के पिताजी बहुत बीमार थे, तो दोनों भाई घर पहुंचे। पिताजी को आशा थी कि दोनों भाई अपनी गलती को मंजूर करके पश्चात्ताप करेंगे, पर दोनों ने ऐसा नहीं किया। जब पिताजी ने इस विषय की चर्चा चलाई भी तो दोनों भाइयों ने हंसकर यही जवाब दिया—"आप हमारी ओर से किसी प्रकार की फिक्र न कीजिए। हम लोग बड़े मजे में हैं।" पिताजी को यह आशा थी कि प्राचीन पद्धति के अनुसार दोनों लड़के क्षमा-याचना करेंगे और रुपये भी मांगेंगे, पर उन्हें निराश होना पड़ा। रुपया न मांगना उन्हें और भी खटका, लेकिन उनके हृदय में दोनों बच्चों की दृढ़ता के लिए सम्मान भी बढ़ गया। जब दोनों भाई पिताजी से अलग होने लगे तो उन्हें बड़ा दुःख हुआ। ऐलेक्जेंडर को तो अपनी नौकरी पर जाना था और क्रोपॉटकिन को फिनलैंड। यही उनकी अंतिम भेंट थी। जब पिताजी का अंतकाल निकट आया तो क्रोपॉटकिन के पास खबर भेजी गई। वह तुरंत फिनलैंड से लौटे, पर घर आकर उन्होंने अपने पिता का जनाजा निकलता हुआ देखा।

क्रोपॉटकिन ने तत्कालीन परिस्थिति का वर्णन बड़े आकर्षक ढंग से

किया है। जिन आलीशान घरो मे पुराने विचारो के बडे-बडे धनाढ्य कुटुंब रहते थे, अब वहा नई रोशनी के आदमी बस गए थे। बूढो, अधेडो तथा नवयुवको में विचारो का सघर्ष जारी था। एक जनरलसाहब के एक लडकी थी। वह मास्को में स्त्रियो के लिए खुले नवीन विश्वविद्यालय में पढना चाहती थी, पर जनरलसाहब तथा उसकी माता दोनो इस बात को निहायत नापसद करते थे। दो बरस तक वह लड़की अपने माता-पिता से लडती रही और तब कही उसे इस बात की इजाजत मिली कि वह विश्वविद्यालय में पढे और सो भी इस शर्त पर कि उसकी मा नित्यप्रति उसके साथ विश्व-विद्यालय मे जाया करेगी! मा बराबर हर रोज अपनी लडकी को विद्यालय मे ले जाती और अन्य बालिकाओ के साथ वह भी घटो तक अपनी लडकी के साथ बैठी रहती, पर इस तमाम देखभाल और नियत्रण के होते हुए भी दो वर्ष के भीतर ही लडकी के विचार क्रातिकारी होगए। वह एक क्रातिकारी दल में सम्मिलित होगई! पकडी गई और सालभर के लिए उसे सेंट-पीटर तथा सेंट-पॉल के भयकर जेलखानो की हवा भी खानी पडी।

पास ही उसी मुहल्ले में एक और कुटुंब रहता था। काउन्ट महाशय तथा उनकी स्त्री का बडा कठोर शासन था। वे थे पुराने विचारो के, और उनकी लडकिया थी नई रोशनीवाली। लडकियो को निरर्थक आलस्यमय जीवन बहुत अखरता था, वे उससे तग आगई थी और अपनी अन्य सहेलियो की तरह स्वतत्रतापूर्वक विद्यालय मे पढना चाहती थी, पर कठोर माता-पिता भला उसकी अनुमति क्यो देने लगे! वर्षों तक माता-पिता तथा पुत्रियो का झगडा चलता रहा। आखिर बडी लडकी ने निराश होकर जहर खा लिया और अपनी जीवन-लीला समाप्त कर दी। तब उसकी छोटी बहन को विद्यालय मे जाने की छूट मिली!

जिन घरो में पहले प्राचीन प्रथा के पोषक जमीदार रहते थे, वहा अब क्रातिकारियो के अड्डे होगए!

स्विट्जरलैंड की यात्रा

सन् १८७२ में क्रोपॉटकिन ने स्विट्जरलैंड की यात्रा की। वहा वह अंतर्राष्ट्रीय मजदूर संघ के कार्यकर्ताओ से मिले। मजदूरो की जागृति के लिए जो आदोलन अन्य देशो मे हो रहे थे उनके विषय में अधिकाधिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए उनकी अभिलाषा बढने लगी। क्रोपॉटकिन की भाभी उन दिनो ज्यूरिच में पढ रही थी। उन्होने क्रोपॉटकिन को बहुत-सा साहित्य लाकर दिया। दिन-रात क्रोपाटकिन उसी साहित्य के पढने मे व्यस्त रहने लगे। क्रोपॉटकिन लिखते है :

"उस समय मैंने जो-कुछ अध्ययन किया, उसका अमिट असर मेरे दिमाग पर हुआ। मुझे अब भी उस छोटी-सी कोठरी की याद है, जिसमे बैठकर मैंने उस साहित्य का अध्ययन किया था। उस कोठरी मे एक खिडकी थी, जिसके सामने एक विशाल नील झील दीख पडती थी, और कुछ फासले पर पहाडिया नजर आती थी। इन्ही पहाडियों के निकट स्विटजरलैंड के निवासियो ने अपनी स्वाधीनता के लिए अनेक लड़ाइया लड़ी थीं। वह दृश्य अनेक पुण्यमय संग्रामो की याद दिलाता था।"

साम्यवादी साहित्य की विशेषता

जिस साम्यवादी साहित्य का अध्ययन क्रोपॉटकिन कर रहे थे, उसका जिक्र करते हुए वह लिखते है :

"साम्यवादियों के साहित्य मे बडे-बडे पोथे नही है। यह साहित्य ग़रीब आदमियो के लिए लिखा जाता है और ग़रीबो के पास दो-चार आने से अधिक खर्च करने के लिए होता नही, इसलिए साम्यवादी साहित्य की मुख्य शक्ति उसकी छोटी-छोटी पैमफलेटो और समाचारपत्रो के लेखो में ही होती है। इसके सिवा साम्यवाद के ग्रथो में वह चीज मिल भी नही सकती, जिसकी आवश्यकता इस विषय के प्रेमियो को हुआ करती है। ग्रंथों मे तो सिर्फ सिद्धांतों का वर्णन रहता है और उन सिद्धांतो के समर्थन में वैज्ञानिक

युक्तियां रहती हैं, पर जो असली चीज है, यानी मजदूर लोग इन सिद्धांतों को किस प्रकार ग्रहण करते हैं और ये सिद्धांत व्यवहार में कैसे लाए जा सकते हैं, इन बातों के जानने के लिए साम्यवादी समाचारपत्रों का पढ़ना अत्यंत आवश्यक है। केवल अग्रलेख ही नहीं, बल्कि खबरें भी पढ़नी चाहिए, और लेखों की अपेक्षा खबरों को पढ़ना और भी अधिक आवश्यक है। आंदोलन की गहराई और उसके नैतिक प्रभाव का अंदाज इन खबरों से ही लग सकता है। कोरमकोर सिद्धांतों से कुछ समझ में नहीं आता। जरूरत इस बात के जानने की है कि ये सिद्धांत कहांतक साधारण जनता के हृदय तक पहुंच गए हैं, और कहांतक वे अपने दैनिक जीवन में इन सिद्धांतों को कार्य-रूप में परिणत करने के लिए तैयार हैं।"

मजदूरों के साथ निवास

साम्यवादी साहित्य को पढ़कर क्रोपॉटकिन को एक नई दुनिया का दृश्य दीखने लगा, वह दुनिया, जिसके विषय में समाज-शास्त्रों के सिद्धांतों के विद्वान् रचयिता बिल्कुल नहीं जानते, यानी मजदूर-संसार, जिसका सच्चा ज्ञान उनके बीच में रहकर ही हो सकता है। बस, क्रोपॉटकिन ने यही निश्चय किया कि दो महीने मजदूरों के बीच में गुजारे जाय। इसीलिए वे ज्यूरिच से चलकर जिनेवा पहुंचे। यहांपर उन्हें मजदूरों के साथ रहने और उनकी हालत देखने का अच्छा अवसर मिला। जब देश में मजदूर-संगठन का आंदोलन शुरू होता है तो उसका मजदूरों पर कैसा प्रभाव पड़ता है, इसका जिक्र करते हुए क्रोपॉटकिन लिखते हैं :

"बिना मजदूरों के साथ रहे, इस बात का पता ही नहीं लग सकता कि संगठन का प्रभाव मजदूरों के दिमाग पर कैसा पड़ता है। वे इस संगठन में पूरा-पूरा विश्वास करने लगते हैं, जब कभी उसके विषय में बोलते हैं, तो बड़े प्रेम के साथ और हर तरह से उसकी सहायता करने के लिए आत्म-त्याग करने को उद्यत रहते हैं। हर रोज हजारों ही मजदूर अपना समय देते हैं और भूखों मरकर बचाये हुए पैसे देते हैं। उन्हें इस बात की चिंता

रहती हैं कि हमारे चलाए हुए पत्र कहीं बंद न हो जायं। अपनी मजदूर-कांग्रेस के अधिवेशनों के लिए जो खर्च होता है, उसकी भी फिक्र उन्हें रहती है और अपना काम करते हुए जो साथी जेल जाते हैं या अन्य प्रकार से दंडित होते हैं, उनकी भी वे मदद करते हैं।....बाहर-वाले इस बात का अंदाज लगा ही नहीं सकते कि मजदूरों को अपने आंदोलन के जीवित रखने के लिए कितना आत्म-त्याग करना पड़ता है। जिनेवा में मैंने देखा कि अंतर्राष्ट्रीय मजदूर-संघ का मेंबर होना भी मजदूरों के लिए कोई कम साहस का काम नहीं था। उसके लिए भी बड़े नैतिक साहस की जरूरत थी, क्योंकि उससे मालिक लोग नाराज हो सकते और नौकरी से बरखास्त तक कर सकते थे। बरखास्त होने पर महीनों तक घर बैठे रहना पड़ता था। मजदूर-संघ में शामिल होने पर कुछ-न-कुछ चंदा देना ही पड़ता था, और यह चंदा एक मामूली गरीब मजदूर के लिए अपनी क्षुद्र आमदनी में से निकालना कोई आसान बात नहीं थी। मीटिंग में जाना भी इन बेचारों के लिए एक प्रकार का त्याग ही था, क्योंकि मजदूरी करने के बाद जो घंटे बच रहते हैं, वे उनके आराम के लिए ही काफी नहीं थे, और दो घंटे मीटिंग में खर्च करने के मानी थे दो घंटे आराम में कमी करना। ये मजदूर शिक्षा प्राप्त करने के लिए अत्यंत उत्सुक थे, पर उन शिक्षित स्वयंसेवकों की, जो इन लोगों को पढ़ाने के लिए उद्यत थे, संख्या अत्यल्प थी। बड़ी जरूरत इस बात की थी कि वे शिक्षित आदमी, जिनके पास अवकाश हो, इन मजदूरों के पास आकर उन्हें अपना संगठन करना सिखलाते, लेकिन ऐसे आदमी बहुत कम थे, जो इन गरीब मजदूरों की निःस्वार्थ भाव से सेवा करने के लिए उद्यत हों। वैसे इनकी निस्सहाय अवस्था से लाभ उठाकर अपना राजनैतिक महत्व बढ़ानेवाले आदमियों की कमी नहीं थी। ज्यों-ज्यों मैं इन मजदूरों के साथ रहा, मेरा यह विश्वास दृढ़ होता गया कि इन गरीब मजदूरों की सेवा करना ही मेरे जीवन का प्रधान उद्देश्य है। स्टैपनियाक नामक क्रांतिकारी ने एक जगह लिखा है—'प्रत्येक क्रांतिकारी के जीवन में एक क्षण ऐसा

आता है—चाहे उस क्षण की घटना बिल्कुल क्षुद्र ही हो—जब वह उस बात की कसम खा लेता है कि मैं अपना सारा जीवन क्रांति के लिए अर्पित कर दूंगा।' वह क्षण मेरे जीवन में भी आया था। ज्यूरिच में रहते हुए मैंने देखा कि ये शिक्षित आदमी कितने कायर होते हैं, जो अपने ज्ञान और अपनी शक्तियों को उन लोगों की सेवा में अर्पित करने में सकोच करते हैं, जिन्हें ज्ञान तथा शक्ति की इतनी अधिक आवश्यकता है। मैंने दिल मे कहा, 'देखो ये मजदूर अपनी गुलामी का अनुभव कर रहे है। ये इस दासता से अपना पिंड छुडाना चाहते है, पर इनके मददगार कौन है और कहा है? कहा है वे आदमी, जो सर्वसाधारण की सेवा करने के लिए आगे आवें—ऐसे आदमी नही, जो अपनी महत्वाकाक्षाओ की पूर्त्ति के लिए इन बेचारो का उपयोग करके अपना मतलब गाठते है?"

क्रोपॉटकिन की ये बाते भारतीय मजदूरो की वर्तमान स्थिति से कितनी मिलती-जुलती है? मजदूरो की निस्सहाय अवस्था से लाभ उठाकर अपना उल्लू सीधा करनेवाले और उनकी मदद से अपना राजनैतिक महत्व बढानेवालो की इस देश मे भी कमी नही है, पर क्रोपॉटकिन की तरह नि स्वार्थ सेवको का तो अभाव ही समझिए।

अराजकवादी कैसे बने ?

प्रिंस क्रोपॉटकिन जिनेवा मे अवतक जिन मजदूर-नेताओ के सम्पर्क मे आए थे, वे बाहर प्लेटफार्म पर जोर-जोर के लेक्चर झाडते थे, पर भीतर-ही-भीतर बडी तिकडमबाजी से काम लेते थे। क्रोपॉटकिन को उनकी यह दुरगी चाले बहुत नापसद आई। उन्होने एक नेता से कहा—"अन्तर्राष्ट्रीय मजदूरसघ की एक शाखा भी तो है, जो बाकूनिस्ट के नाम से प्रसिद्ध है (अनार्किस्ट शब्द का व्यवहार तबतक नही हुआ था), मै उससे परिचय करना चाहता हू।" उस नेता ने क्रोपॉटकिन को एक परिचय-पत्र दे दिया, और फिर क्रोपॉटकिन से कहा—"मालूम होता है कि अब आप हमारे दल मे वापस नही आयगे। आप उन्हीके पास रह जायगे।' क्रोपॉटकिन लिखते है—

'इन महाशय का अनुमान ठीक ही निकला।'

एक अराजकवादी नेता से मुलाकात

जूरा पहाड के निकट घड़ी बनानेवाले मजदूरो का एक सघ था। पहले तो क्रोपॉटकिन वहां जाकर एक सप्ताह रहे, पीछे वहा अराजकवादियो के नेताओ से मिलने का निश्चय किया। एक नेता का नाम था जेम्स गुलौम। ये महाशय एक छोटे-से प्रेस के मैनेजर थे और प्रूफ-रीडिग का काम करते थे। इस काम से उन्हे इतनी कम आमदनी होती थी कि उन्हें रात के समय बैठकर जर्मन भाषा से फ्रेंच मे अनुवाद करना पडता था, जिसके लिए उन्हें ५) रु० फार्म मिलता था। क्रोपॉटकिन लिखते है :

"जब मैं जेम्स गुलौम मे मिलने के लिए गया और दो घंटे बातचीत करने के लिए मागे, तो उसने कहा—'मुझे खेद है कि दो घटे अपने वक्त मे से मैं नहीं बचा सकता। मेरे प्रेस मे आज शाम को एक स्थानीय पत्र का प्रथम अंक निकलनेवाला है। मुझे उसके प्रूफ तो देखने ही पडेंगे, साथ ही उसका संपादन भी करना पडेगा। पर्चो को लपेटकर उनपर पते लिखने के लिए कागज भी मुझे ही चिपकाने पडेंगे, और फिर लगभग एक हजार पते भी मुझे अपने हाथो मे लिखने पडेगे।' मैने कहा—'पते लिखने का काम मेरे जिम्मे रहा।' उसने जवाब दिया, 'यह हो नही सकता, क्योकि अधिकाश पते मुझे याद करने पडे है, वे कही लिखे हुए नही रखे और जो थोड़े-से लिखे हुए है भी, वे ऐसे हस्ताक्षरों में कागज के टुकड़ो पर लिखे पडे है कि उन्हें दूसरा कोई पढ नहीं सकता।' तब मैंने कहा—'तो फिर मैं आज शाम को आकर आपके पर्चों को लपेटकर उनपर पते लिखने के लिए कागज ही चिपका दूंगा। उससे आपका जो थोडा-सा समय बच जायगा, वह आप मुझे दे दीजिए'।"

यह सुनकर जेम्स गुलौम ने क्रोपॉटकिन से हाथ मिलाया और कहा—"तुम्हारी बात मंजूर है, शाम को आना।" दोपहर के समय क्रोपॉटकिन वहां पहुंचे और उन्होंने शाम तक अखबारों में चिटें चिपकाई। गुलौम उनपर

पते लिखते रहे। जब रात होने को आई तो गुलौम ने काम पर से छुट्टी ली और दो घंटे क्रोपॉटकिन से बातचीत के लिए निकाले। दोनो बाहर टहलने के लिए गए, और फिर वहा से लौटकर गुलौम को जूरा फेडरेशन की अराजकवादी पत्रिका का संपादन करना पड़ा।

रूस को वापसी

'जबतक क्रोपॉटकिन स्विट्जरलैंड में रहे, वह अराजकवाद के सिद्धातों का अच्छी तरह अध्ययन करते रहे, या यों कहना चाहिए कि यहीपर वह अराजकवादी बने। यहींपर उनके विचारों में दृढ़ता भी आगई। क्राति के विषय में भी उनके विचार स्पष्ट होने लगे। वह लिखते है :

"स्विट्जरलैंड में रहकर धीरे-धीरे यह बात मेरी समझ में आने लगी कि जब विकास धीरे-धीरे होने के बजाय बहुत तेजी से एक साथ होने लगता है तभी उसे क्राति कहते है, और क्राति भी मनुष्य-जाति के लिए उतनी ही स्वाभाविक है, जितना कि धीरे-धीरे क्रम-विकास। यह क्रम-विकास तो सभ्य समाज में बराबर होता ही रहता है। जब कभी क्रान्ति (या यो कहिए शीघ्र-विकास) का प्रारभ होता है, तो उसके साथ थोड़ा-बहुत गृह-युद्ध भी प्राय. शुरू हो जाता है। देश के निवासियो में आपस में खून-खच्चर होने लगता है। उस समय यह सवाल नही उठना चाहिए कि क्राति कैसे रोकी जाय, बल्कि यह प्रश्न होना चाहिए कि कम-से-कम खून-खच्चर से अधिक-से-अधिक लाभ कैसे उठाया जाय। कम-से-कम आदमी हताहत हो, कम-से-कम मात्रा में पारस्परिक विद्वेष फैले और क्राति का उद्देश्य पूरा हो ही जाय। इसके लिए सर्वोत्तम उपाय यही है कि समाज के अत्याचार-पीड़ित भाग को यह बात साफ तौर पर बतला दी जाय कि उनका उद्देश्य क्या है। जबतक पीड़ित समाज को अपने ध्येय का बिल्कुल स्पष्ट ज्ञान न होगा, तबतक उनमें उसकी प्राप्ति के लिए उपयुक्त उत्साह नही हो सकता और बिना उत्साह के क्राति में सफलता मिल ही नही सकती। यदि अत्याचार-पीड़ित समाज अपना ध्येय बिल्कुल साफ तौर पर निश्चित कर ले तो धनाढ्य

और सुशिक्षित जनता में जो भले आदमी हैं, उनमें से कुछ तो उसका साथ देने को अवश्य तैयार हो जायंगे।"

जब्त की हुई किताबों का रूस में प्रवेश

जब क्रोपॉटकिन स्वदेश को वापस आने लगे तो उन्होंने सोचा कि अब इकट्ठे किये हुए मसाले का क्या करना चाहिए। रूस में तो उसकी बिल्कुल मनाई थी और वहां के क्रांतिकारियों को इस साहित्य की बड़ी आवश्यकता थी। वहां वह किसी दाम पर भी नहीं मिलता था। आखिरकार उन्होंने यही तय किया कि जैसे हो तैसे इस साहित्य को रूस में प्रवेश कराना ही चाहिए। वियना और वारसा होते हुए वे सेंटपीटर्सबर्ग को लौटे। उन दिनों कितने ही यहूदियों का यह काम था कि वे जब्त-शुदा किताबें इसी तरह रूस में भेजकर अपनी गुजर करते थे। एक यहूदी के मारफत उन्होंने अपना सारा मसाला रूस को भिजवा दिया, जो किसी अगले स्टेशन पर उन्हें ज्यों-का-त्यों मिल गया।

निहिलिस्ट संप्रदाय

रूस में इन दिनों नवयुवकों में एक विशेष प्रकार की मनोवृत्ति का विकास हो रहा था। पिछले २५० वर्षों में, जब रूस में दासत्व-प्रथा बनी हुई थी, अनेक ढोंग और दंभपूर्ण प्रथाएं प्रचलित होगई थीं और इन प्रथाओं ने शिष्टाचार का रूप धारण कर लिया था। मनुष्यों के व्यक्तित्व का कोई खयाल नहीं किया जाता था। पिता लोग अपने पुत्रों पर जोर-जबरदस्ती करते थे। स्त्रियां, लड़कियां और पुत्रों का भी आचरण कपट-पूर्ण होगया था। रूस का संपूर्ण जीवन इसी दंभ तथा कपट का जीवन था। पुराने रीति-रिवाजों, दंभपूर्ण कुप्रथाओं और नैतिक कायरताओं ने धार्मिकता का रूप धारण कर लिया था। सरकारी कानून से तो इन कुप्रथाओं का अंत किया नहीं जा सकता था। इनके लिए तो आवश्यकता थी एक सामाजिक विद्रोह की, जिससे कि यह कपटाचरण जड़-मूल से नष्ट होजाय।

रूसी युवकों ने यह विद्रोह किया, और यह विद्रोह इतना अधिक व्यापक हुआ, जितना यूरोप तथा अमेरिका में भी नहीं हुआ था। सुप्रसिद्ध रूसी लेखक तुर्गनेव ने इस विद्रोह को 'निहिलिज़्म' का नाम दिया था। इस शब्द का प्रयोग पहले-पहल उनके युगांतरकारी उपन्यास 'फादर्स एण्ड चिल्ड्रन' ('पिता और पुत्र') में हुआ था।

सबसे पहला काम जो निहिलिस्ट लोगों ने किया, वह था 'सभ्य' मानव-समाज के ढोंगों का विरोध, उन ढोंगों का जिन्होंने शिष्ट आचरण का रूप धारण कर लिया था। निहिलिस्ट लोगों का सर्वश्रेष्ठ गुण था पूर्ण सच्चाई। वे बुद्धिवादी थे, और किसी भी ऐसी रीति-रिवाज को, जो उनकी समझ में अक्ल के खिलाफ थी, मानने के लिए तैयार नहीं थे। प्रिंस क्रोपॉटकिन लिखते हैं :

"सभ्य कहलानेवाले आदमियों के जीवन छोटे-छोटे शिष्टतापूर्ण झूठों से भरे हुए होते हैं। सभ्य समाज में ऐसे बहुत-से आदमी देखने में आते हैं, जो मन में तो एक-दूसरे से घोर घृणा करते हैं, पर जब अकस्मात् कहीं मिल जाते हैं, तो अपने चेहरे से बड़ी प्रफुल्लता और मधुर मुस्कराहट जाहिर करते हैं, और यह दिखलाते हैं, मानो उन्हें एक-दूसरे से मिलकर बड़ी भारी खुशी हुई हो। निहिलिस्ट लोग इस प्रकार के दंभपूर्ण बर्ताव से घृणा करते थे। वे तभी मुस्कराते थे, जब किसी आदमी से मिलकर उन्हें हार्दिक प्रसन्नता हुई हो। सारी ऊपरी दिखावट की नम्रताओं से, जो दरअसल दंभ का ही दूसरा रूप होती हैं, वे नफरत करते थे। इन निहिलिस्ट लोगों की प्रवृत्ति अपने पिताओं की प्रवृत्ति से बिल्कुल भिन्न थी।

"जिस पीढ़ी के पिता थे, वह ऊपरी मिलनसारी, नम्रता और आव-भगत में तो कमाल की होशियारी जाहिर करती थी, पर भीतर उसका हृदय बड़ा कठोर था। अपने बच्चों, स्त्रियों तथा दासों के हाथ इस पीढ़ी का बर्ताव जानवरों जैसा था, पर यह पीढ़ी ऊपर से बड़ी नाजुक प्रतीत होती थी। निहिलिस्ट लोग इस भयंकर आडंबरपूर्ण भावुकता के विरोधी थे। निहि-

लिस्ट लोगों के पूर्व की पीढ़ी 'सौंदर्य', 'आदर्श', 'कला के लिए कला', तथा 'सौंदर्य-विज्ञान' इत्यादि विषयों पर बड़ी मौज के साथ गप्पें मारा करती थी, और कभी इस बात का खयाल भी नहीं करती थी कि कला की ये सुंदर चीजें उस रुपये से खरीदी जाती हैं, जो गरीबों का खून चूसकर इकट्ठा किया जाता है। भूखों मरनेवाले किसानों की कमाई से और आधे पेट रहनेवाले मजदूरों के वेतन से छीनकर इकट्ठे किये हुए रुपये से ये 'सौंदर्य-प्रेमी' कला की चीजों को खरीदते थे। बस, यह बात निहिलिस्ट लोगों को सुहाती न थी और वे टॉल्सटाय के शब्दों में कहा करते थे—'एक जोड़ी जूता तुम्हारे तमाम सुंदर-से-सुंदर चित्रों तथा शेक्सपीयर के विषय में तुम्हारे सभाषणों से कहीं अधिक उपयोगी है।' निहिलिस्ट लोगों के सिद्धांतों का प्रचार केवल लड़कों में ही नहीं, लड़कियों में भी होगया था। अमीर घरानों की अनेक लड़कियां अपने माता-पिताओं के घरों को छोड़कर निकल पड़ी थीं। उन्होंने गुड़ियों की तरह रहना और रेशमी कपड़े पहनना पसंद नहीं किया, और बजाय इसके वे मोटे-से-मोटे ऊनी कपड़े पहने तथा अपने बाल कटाए हुए हाई-स्कूलों में पढ़ने जाने लगीं। अपनी व्यक्तिगत स्वाधीनता की प्राप्ति के लिए उन्होंने अनेक कष्ट सहना अंगीकार किया। जिन स्त्रियों ने देखा कि उनके तथा उनके पतियों के बीच में कोई सच्चा स्नेह नहीं रहा है, और कानूनी विवाह बाहर से भीतरी प्रेमभाव को ढके हुए है, वे अपने पतियों को छोड़कर अलग होगईं। ऐसी स्त्रियों को अपने बच्चों के साथ गरीबी का मुकाबला करना पड़ा, पर उन्होंने अपनी आत्मा की विरोधी तथा अपने स्वभाव के सर्वोत्तम गुणों की नाशक पहले की दंभपूर्ण परिस्थिति से इसे कहीं अच्छा समझा।

"निहिलिस्ट लोग नित्यप्रति की छोटी-छोटी बातों में भी सच्चाई से काम लेते थे। समाज में बातचीत करने का जो परंपरागत ढंग था, उसे भी निहिलिस्ट लोगों ने तिलांजलि दे दी थी, और जो कुछ उन्हें कहना होता था, उसे संक्षेप में और खरे ढंग से कह देते थे, बल्कि ऊपर से कुछ रूखापन भी जाहिर करते थे।"

क्रोपॉटकिन का लिखा हुआ निहिलिस्ट लोगों का विवरण सचमुच बड़ा मनोरंजक है। हमारे यहां के युवक-आंदोलनों में निहिलिस्ट लोगों की-सी स्पष्टवादिता तथा दंभ-हीनता की नितांत आवश्यकता है।

साधारण जनता की ओर

सन् १८६०-१८६५ में यानी आज से ९५ वर्ष पूर्व रूसी नवयुवकों ने जो कार्य कर दिखाया था, वह अभी हमारे यहां प्रारंभ ही नहीं हुआ! वह काम था सर्वसाधारण की—गांववालों की—सेवा का। प्रिंस क्रोपाटकिन लिखते हैं :

"हजारों ही रूसी नवयुवक सादा जीवन व्यतीत करते हुए सर्वसाधारण की सेवा कर रहे थे। उनका ध्येय था 'जनता की ओर चलो' 'सर्वसाधारण की तरह रहो' (To the people, be the people)। उस समय रूस के अमीर घरानों के माता-पिताओं तथा पुत्र-पुत्रियों में एक तरह का संघर्ष-सा छिड़ा हुआ था। माता-पिता यह चाहते थे कि हमारे लड़के तथा लड़कियां प्राचीन परंपरा को कायम रखें, पर यह नई पीढ़ी अपने जीवन को अपने आदर्शों के ढांचे में ढालना चाहती थी। नवयुवकों ने फौज की, बैंकों की तथा दुकानों की नौकरी छोड़ दी और वे उन नगरों में जाकर इकट्ठे होगए, जहां विश्वविद्यालय थे। बड़े-बड़े घरानों की लड़कियां बिना पैसे के सेंटपीटर्सबर्ग तथा मास्को को आती थीं और वहां आकर कोई ऐसा धंधा सीखती थीं, जिससे उन्हें स्वाधीनता मिले। बड़ी-बड़ी कठिनाइयों के बाद उन्हें यह स्वाधीनता मिली, पर यह स्वाधीनता उन्होंने अपने सुख-उपभोग के लिए प्राप्त नहीं की थी, बल्कि वे यही चाहती थीं कि उस ज्ञान को वे साधारण जनता तक—गरीब किसान-मजदूरों तक—ले जायं, जिसने उन्हें पराधीनता से मुक्त किया था। रूस के प्रत्येक नगर में और सेंटपीटर्सबर्ग के प्रत्येक मुहल्ले में लड़कों तथा लड़कियों के छोटे-छोटे समूह बन गये थे, जिनका उद्देश्य था आत्म-शिक्षण तथा आत्मोन्नति। इन समूहों में तत्ववेत्ताओं के लेख, अर्थशास्त्रियों के प्रबंध तथा इतिहास-

लेखकों के गवेषणापूर्ण निबंध पढ़े जाते थे और फिर उनपर खूब बहस होती थी, पर इस निबंध-पाठ तथा वाद-विवाद का उद्देश्य एक ही था, यानी 'हम लोग साधारण जनता (Masses) के लिए किस प्रकार उपयोगी बनें।' धीरे-धीरे ये युवतियां और नवयुवक इस परिणाम पर पहुंचे कि साधारण जनता की सेवा करने का एक ही उपाय है, यानी उनके बीच में जाकर बसना और उन्हीं-जैसी जिंदगी व्यतीत करना। ये नवयुवक डाक्टर, कपाउंडर, शिक्षक, लुहार, बढ़ई तथा मजदूर इत्यादि बनकर ग्रामों में पहुंचे और गांववालों के साथ रहने लगे। लड़कियों ने शिक्षिकाओं तथा दाइयों और नर्सों का काम सीखा और सैकड़ों की तादाद में गांवों में पहुंच कर वहां गरीब-से-गरीब आदमियों की सेवा करने लगीं। ये नवयुवक और ये युवतियां समाज-संगठन या क्रांति के विचारों के उद्देश्य से ग्रामों में नहीं गई थीं। उस वक्त उन्हें इसका खयाल भी नहीं था। उस वक्त तो उनका उद्देश्य केवल यही था कि जनता को लिखना-पढ़ना सिखाया जाय, बीमार पड़ने पर उनके लिए दवा का प्रबंध किया जाय तथा अज्ञानांधकार से उन्हें निकालकर ज्ञान के प्रकाश में लाया जाय। साथ ही ये युवक ग्रामवासियों के विचारों से भी परिचित होना चाहते थे। वे यह जानना चाहते थे कि समाज-सुधार के विषय में इनके क्या खयाल हैं।"

हमारे देश के नवयुवक प्रिंस क्रोपॉटकिन की इन बातों को पढ़ें और फिर सोचें कि क्रांति किस चीज को कहते हैं, और उसके लिए प्रारंभिक तैयारी किस तपस्या तथा त्याग के साथ की जाती है। क्रांति का नारा लगाना आसान काम है, लेकिन सच्ची क्रांति की तैयारी में योग देना बड़ा ही कठिन है।

सत्साहित्य का प्रचार

उन दिनों रूस की ठीक वैसी ही हालत थी, जैसी कि कुछ वर्ष पहले भारतवर्ष की थी। षड्यंत्रों का सफलतापूर्वक संचालन करना संभव नहीं था। सन् १८६९ में नीचेफ नामक एक रशियन ने एक षड्यंत्रकारिणी संस्था

कायम की थी, पर उसे सफलता नही मिली। जितने सदस्य इस सभा के बने थे, सब पकड लिये गए, और रूस के सर्वश्रेष्ठ युवको को देश-निकाला देकर साइबेरिया भेज दिया गया। बेचारे कुछ काम भी न कर पाए। षड-यत्रकारियों को प्राय. असत्य और धोखेबाजी का भी आश्रय लेना पडता है और नीचेफ के साथी भी उन सब धूर्तताओ से काम लेते थे। उन्ही दिनो इन षड्यत्रकारी युवको की कार्य-पद्धति के विरोध में दूसरे युवको ने एक और सस्था कायम की थी, जिसका नाम था 'चेकोवस्की का सत्सग'। इस सत्सग ने रूस के सामाजिक आदोलन मे काफी भाग लिया था और इसके द्वारा आगे चलकर बडा जबरदस्त काम हुआ। प्रिंस कोपॉटकिन इस सत्सग के सदस्य बन गए। इस सस्था का उद्देश्य था आत्म-शिक्षण। इस सस्था के सदस्यों ने यह बात पहले ही समझ ली थी कि यदि हम किसी सस्था को चिरस्थायी बनाना चाहते है तो उसकी नीव सच्चरित्रता पर पर रखी जानी चाहिए। प्रिंस क्रोपॉटकिन ने इसका जिक्र करते हुए एक बडा महत्वपूर्ण वाक्य लिखा है, जिसकी ओर उन सबको, जो भारत मे सस्थाओ के सचालक हैं, ध्यान देना चाहिए। वह लिखते है—'उन थोडे-से मित्रो ने, जिन्होंने चेकोवस्की के सत्सग की स्थापना की थी, यह बात अच्छी तरह समझ ली थी (और उनकी यह समझ बिल्कुल ठीक भी थी) कि प्रत्येक सस्था के मूल में नैतिक दृष्टि से विकसित (सच्चरित्रता-युक्त) व्यक्तित्व होना चाहिए, आगे चलकर उस सस्था का चाहे जो राजनैतिक रूप हो और भविष्य मे वह चाहे जो कार्यक्रम निश्चित करे।"

प्रिंस क्रोपॉटकिन की यह बात कितने तजुरबे की है। जो लोग झूठ, दगाबाजी और फरेब का आश्रय लेकर देश का उद्धार करना चाहते हैं और जो अपने विरोधियो के पतन के लिए किसी भी तरह के हेय उपाय काम मे ला सकते है, वे इन पक्तियो को पढें।

चेकोवस्की के सत्सग मे ऐसे ही व्यक्ति थे, जो नीतिवान् थे। क्रोपॉटकिन लिखते है— "यही कारण था कि चेकोवस्की के सत्सग का कार्यक्रम धीरे-धीरे काफी व्यापक बन गया और उसकी शाखाए तमाम

रूस देश मे फैल गई। आगे चलकर जब गवर्नमेंट के घोर अत्याचारो के कारण देश मे क्रातिकारी सग्राम शुरू हुआ तो इस सत्सग ने कितने ही ऐसे स्त्री और पुरुष उत्पन्न किए, जिन्होंने रूस की जारशाही के विरुद्ध युद्ध करते हुए अपने प्राण अर्पित कर दिये।"

क्रोपॉटकिन इस सत्सग की प्रारभिक दशा का वर्णन इस प्रकार करते हैं—"सन् १८७२ में इस सत्संग के सामने कोई क्रातिकारी कार्य-क्रम नही था। उस समय उसका एकमात्र उद्देश्य था 'आत्म-शिक्षण', पर यदि इसका उद्देश्य यहीतक परिमित रहता, तब तो, जैसाकि प्राय' मठो में हुआ करता है, उसकी उन्नति रुक जाती, पर सदस्यो ने एक उपयुक्त कार्य अपने लिए चुन लिया था, और वह था सत्साहित्य का प्रचार। ये लोग अच्छी-अच्छी पुस्तकें खरीदते, मसलन मार्क्स की किताबें, रूस के ऐतिहासिक ग्रथ और मजदूरो की हालत से सबंध रखनेवाली किताबें इत्यादि। सत्सग के सदस्य इन किताबों को खरीदकर प्रातीय नगरो के पाठको तक पहुचाते थे। थोडे दिनो में यह कार्य इतना व्यापक होगया कि रूस के ३८ प्रातो में एक भी प्रात ऐसा नही बचा कि जहा इस प्रकार के साहित्य के प्रचारक न हों। धीरे-धीरे यह सत्संग शिक्षित आदमियो मे साम्यवादी साहित्य के प्रचार करने का केंद्र बन गया। आगे चलकर विद्यार्थियो तथा किसानो और मजदूरो के बीच संबंध स्थापित करने में यह सत्संग बडा सहायक हुआ। इसी अवसर पर सन् १८७२ ई. मे मैं इस सत्सग का सदस्य बना। उन दिनो रूस मे तमाम गुप्त समितियां दमन की शिकार बनाई जाती थी। इस 'आत्म-चरित' के पाश्चात्य पाठक शायद मुझसे यह आशा करते होंगे कि मैं उन्हें यह बतलाऊं कि इस सत्संग में प्रवेश-संस्कार कराते समय मुझे क्या-क्या रस्मे अदा करनी पड़ी और कौन-कौन शपथें खानी पड़ी, पर मुझे ऐसे पाठको को निराश ही करना पडेगा। इस सत्संग के कोई विशेष नियम नही थे, सिर्फ एक बात का खयाल रखा जाता था, वह यह कि केवल उन्ही लोगो को इसका सदस्य बनाया जाय, जिनकी परीक्षा संकट मे की जा चुकी हो और जो कष्टो की कसौटी में खरे

उतर चुके हों।

"किसी नए सदस्य को शामिल करने के पहले उसके चरित्र की पूर्ण स्पष्टता तथा गंभीरता के साथ आलोचना की जाती थी। स्पष्टता तथा ईमानदारी निहिलिस्ट लोगों का विशेष गुण था। यदि किसी आदमी में थोड़ा भी फरेब या अहंकार पाया जाता तो उसका दाखिल होना असंभव था। सत्संगवालों को इस बात की फिक्र नहीं थी कि उनके सदस्यों की संख्या खूब बढ़ जावे। सत्संग यह भी नहीं चाहता था कि देश की भिन्न-भिन्न संस्थाएं जो काम कर रही हैं, वह सब हमारे द्वारा ही हों। उस वक्त रूस में जनता की सेवा के लिए कितने ही गिरोह काम कर रहे थे। चैकोवस्की का सत्संग यह नहीं चाहता था कि वे हमारे अधीन होजाय। अधिकांश गिरोहों के साथ सत्संग का मित्रतापूर्ण संबंध था, सत्संग उनकी मदद भी करता था, और वे भी सत्संग की मदद करते थे, पर एक-दूसरे की स्वाधीनता में कोई बाधा नहीं पहुंचाता था।

"इस प्रकार हमारा सत्संग छोटे-से मित्रों का दृढ़ समूह था। जिन पन्द्रह-बीस स्त्री-पुरुषों से मेरा परिचय इस सत्संग में हुआ, वैसे नीतिमान् और सच्चरित्र व्यक्ति मुझे जीवन में अन्यत्र नहीं मिले।"

क्रांतिकारी लड़कियां

उस समय रूस में जो लड़कियां देश के उद्धार के लिए कार्य कर रही थीं, उनके चरित्र का वृत्तांत सचमुच अत्यंत उत्साहप्रद है। प्रिंस क्रोपॉटकिन लिखते हैं—"एक लड़की का नाम था सोफिया पीरोवस्काया। वह एक अत्यंत उच्च घराने की थी और उसने अपना बनावटी नाम रख छोड़ा था। इस लड़की का पिता पहले सेंटपीटर्सबर्ग का मिलिटरी-गवर्नर रह चुका था। यह लड़की अपनी माता से, जो उसे बहुत प्रेम करती थी, आज्ञा लेकर हाई-स्कूल में पढ़ने के लिए चली आई थी और उसने अन्य तीन लड़कियों के साथ आत्म-शिक्षण का एक समूह कायम कर लिया था। इस लड़की के घर पर मेरी तथा मेरे साथियों की मीटिंग हुआ करती थी। यह लड़की जो, पहले सेंटपीटर्सबर्ग के ऊंचे-से-ऊंचे भवनों में अच्छी-से-अच्छी पोशाक

पहने हुए दीख पड़ती थी, अब बिल्कुल मजदूर लड़कियों की तरह रहती थी। वह मोटे सूती कपड़े पहनती थी, पुरुषों के-से जूते पहनती थी और जब वह अपने कंधे पर पानी के भरे हुए डोल रखकर लाती थी, तो उसे देखकर यह कोई भी नहीं ताड सकता था कि यह किसी उच्च घराने की लड़की है। जब हम लोग किसानो के-से कपड़े और गवारो के-से जूते पहने हुए उसके घर में घुसते और इन जूतो मे उसका साफ-सुथरा घर मैला हो जाता तो उसके भोलेभाले निष्कलक चेहरे पर बडी कठोरता आ जाती थी और वह हम सबको डांट बतला देती थी। नैतिक दृष्टि से वह बडी संयमशील थी, लेकिन वह उपदेश देनेवाली नही थी। जब उसे किसी सदस्य की कोई बात नामुनासिब जचती तो वह बडी कठोरता से उसकी ओर दृष्टिपात करती। चरित्र-सबधी मामलो मे वह बडी कठोर थी। एक आदमी का जिक्र करते हुए उसने कहा था—'वह तो जनखा है।' जिस समय उसने ये शब्द अपना कार्य करते हुए कहे थे और जिस ढग से कहे थे, वह अबतक मुझे भली-भांति स्मरण है और मैं उसे कभी नही भूल सकता। उसकी वह मुद्रा मेरी स्मृति मे जमकर बैठ गई है। यह लडकी क्रातिकारी विचारो की थी और यह बडी दृढ़प्रतिज्ञ तथा वीरात्मा थी। किसानो और मजदूरो के लिए काम करना ही उसके जीवन का एकमात्र ध्येय था। एक दिन उसने मुझसे कहा —'हमारे समुदाय ने बडा जबरदस्त काम उठाया है; इसके पूर्ण करने मे दो पीढिया बीत जायगी, पर यह काम होना जरूर चाहिए और पूरी तौर पर।' हमारे साथ काम करनेवाली लडकियो मे एक भी ऐसी नही थी,जो फासी से डरती हो। मौका आने पर सभी फांसी के तख्ते पर हँसी-खुशी के साथ चढ सकती थी, पर जिस समय हम लोग सत्साहित्य के प्रचार में लगे हुए थे, उस समय उनमे से किसीको यह ख्याल भी नही था कि फासी का मौका भी आयगा। जब आगे चलकर पीरोवस्काया पकडी गई और उसको फासी का हुक्म हुआ तो उस समय मृत्यु के कुछ घटे पहले उसने जो चिट्ठी अपनी माता को लिखी थी, वह बड़ी करुणाजनक है और उसमें एक स्त्री की प्रेममय आत्मा का सच्चा स्वरूप प्रतिबिम्बित है।"

क्रोपाटकिन ने एक दूसरी लड़की का जिक्र करते हुए कहा है :—
"एक दिन रात को हमें अपने कार्यक्रम से संबंध रखनेवाली कोई बात अपने साथ की एक लड़की को बतलानी थी, इसलिए रात के दस बजे अपने एक मित्र के साथ वहां गया। आधी रात बीत चुकी थी, पर उस लड़की के कमरे में दीपक जल रहा था। हम लोग ऊपर गये, देखा तो वह हमारे कार्यक्रम की नकल करती हुई पाई गई! मुझे उस वक्त एक मजाक सूझा। मैंने कहा—'हम लोग तुम्हें बुलाने के लिए आये हैं। बात यह है कि किले में हमारा जो साथी कैद है, आज हम छापा मारकर उसे छुड़ाना चाहते हैं। उसीके लिए तुम्हारी जरूरत पड़ी है।' उसने हमसे एक भी सवाल नहीं किया। तुरत ही कलम रखकर कुर्सी पर से उठ बैठी, और बोली—'तो चलो।' यह शब्द उसने इतनी सच्चाई और भोलेपन के साथ कहे थे कि उसे सुनकर मुझे अपने मजाक की मूर्खता पर लज्जित होना पड़ा। जब मैंने उसे बतलाया कि हम लोगों ने तो सिर्फ मजाक किया था तो वह अपनी कुर्सी पर बैठ गई, उसकी आंखों में आंसू आगये और निराशापूर्वक उसने कहा—'क्या सचमुच तुम्हारा यह मजाक ही था? भला ऐसा मजाक क्यों करते हो?' उसका यह उत्तर सुनकर मुझे पता लगा कि मैंने कैसा निर्दयतापूर्ण कार्य किया है।"

क्रोपाटकिन के इस कथन से ज्ञात होता है कि उस समय रूस की लड़कियों के हृदय में स्वार्थ-त्याग तथा आत्म-बलिदान के भाव किस हद तक घर कर गए थे।

क्रोपाटकिन का मित्र-मंडल

अत्याचारी जारशाही के दिनों में प्रिंस क्रोपॉटकिन तथा उनके साथियों को जो महान कष्ट सहने पड़े उनकी कथा बड़ी मनोरंजक है। इन महापुरुषों के जीवन सचमुच उत्साह-प्रद हैं। क्रोपाटकिन ने अपने एक साथी सर्गेई कार्वाचिनस्की का हाल इन शब्दों में लिखा है—
तथा अमेरिका में सर्गेई कार्वाचिनस्की स्टैपनियाक के नाम से प्रसिद्ध थे।

हम लोग अपने मित्रमंडल मे उन्हे 'बच्चे' के नाम से पुकारा करते थे। अपनी रक्षा के विषय मे इतने लापरवाह रहते थे कि इसीके कारण उनका उपर्युक्त नाम पड गया था। उनकी इस लापरवाही के मूल मे उनकी निःशंक निर्भयता थी। डरना तो वह जानते ही न थे, और पुलिस जिस आदमी का पीछा कर रही हो उसके लिए सर्वोत्तम नीति भी प्राय. यही है कि वह बिल्कुल निडर बना रहे। किसानो तथा मजदूरों में हमारे इस मित्र ने बड़ा जबरदस्त प्रचार-कार्य किया था, और इसीलिए पुलिस भी इनकी तलाश में रहती थी, पर सर्घेई ने कभी इसकी परवाह नही की, और न कभी अपने को छिपाने का कुछ प्रयत्न ही किया। एक बार तो उनकी इस उद्दण्ड लापरवाही के लिए हमारे मित्र-मंडल ने उन्हें खासी डांट बतलाई थी। बात यह थी कि उस स्थान से, जहा हम लोगों की मीटिंग हुआ करती थी, सर्घेई की जगह दूर थी, और वह वहां अक्सर देरी से पहुचते थे। किसानो की तरह भेड़ की खाल ओढे हुए वह सदर सडक के बीचो-बीच दनादन भागे आते थे। हम लोगो ने उन्हें फटकार बतलाते हुए कहा—'तुम भी बड़े अजीब आदमी हो! भला ऐसी बेवकूफी क्यो करते हो? मान लो, तुम्हें इस तरह भागते हुए देखकर किसी पुलिसवाले के दिल में शंका पैदा हो जाती और वह तुम्हें चोर समझ के पकड लेता तो?' पर मित्रवर सर्घेई अपने विषय में जितने ही लापरवाह थे, दूसरो के विषय में वह उतने ही अधिक सावधान और चिताशील थे। क्या मजाल कि उनकी जबान से कोई ऐसी बात निकल जाय, जिससे भेद खुल जाय और दूसरे आफत मे जा फंसें! क्या ही अच्छा होता, यदि हम लोगों में से प्रत्येक आदमी दूसरो की रक्षा के विषय में उतना ही सावधान रहता, जितना मित्रवर सर्घेई थे। मेरी उनकी घनिष्ठ मित्रता कैसे हुई, यह भी सुन लीजिए। एक दिन रात के बारह बजेतक हमारे मंडल में बातचीत होती रही। मीटिंग खतम करके जब हम लोग जानेवाले थे, उस समय एक लडकी ने आकर कहा—'मेरे पास एक अंग्रेजी किताब है, सवेरे तक इसके १६ पृष्ठो का अनुवाद हो जाना चाहिए। आठ बजे मुझे अनुवाद तैयार मिले। बोलिए, आप लोगों में से यह कार्य

कौन कर सकेगा ?" मैंने किताब का आकार देखा, और कहा—'अगर मुझे कोई सहायक मिल जाय तो मैं रात-भर में ही सारा काम कर सकता हूं।" सर्घेई ने कहा—'मैं तैयार हूं।' बस, हम दोनो जुटकर बैठ गए, और चार बजे ही १६ पृष्ठो का अनुवाद खतम कर डाला। फिर मूल अंग्रेजी से हमने अपने अनुवादो को मिलाकर दुहराया। इसके बाद एक थालभर के दलिया हम लोग हज्म कर गए, जो मेज पर हम दोनों के लिए पुरस्कार-स्वरूप रख दिया गया था। इस प्रकार कार्य समाप्त कर हम दोनो घर लौटे। उसी रात से हम दोनो मे घनिष्ठ मित्रता होगई। ऐसे आदमियों को मै हमेशा पसद करता रहा हू, जिनमे कार्य करने की प्रबल शक्ति हो और जो अपना काम मन लगाकर अच्छी तरह करे। सर्घेई के अनुवाद ने और शीघ्रतापूर्वक कार्य करने की प्रवृत्ति ने मुझपर अच्छा प्रभाव डाला था और ज्यों-ज्यों मेरी उनकी घनिष्ठता बढती गई, मेरे हृदय मे उनके प्रति सम्मान भी बढता गया। वह ईमानदार थे, स्पष्टवक्ता थे, उनमे युवकों-जैसा उत्साह था सुलझी हुई तबीयत के थे, तथा बुद्धिमत्ता भी उनमें उच्चकोटि की थी। उनके इन गुणो ने और उनकी सादगी, सच्चाई, हिम्मत और लगन ने मुझे मुग्ध कर लिया। उन्होंने बहुत-कुछ पढा था और विचार भी काफी किया था। क्रांतिकारी संग्राम के विषय मे, जो हम लोगों ने छेड रखा था, हम दोनो के विचार बहुत-कुछ मिलते-जुलते थे। वह मुझसे उम्र मे दस वर्ष छोटे थे और शायद उन्हे इस बात का ज्ञान नही था कि आगे चलकर क्रांति कैसा भयंकर रूप धारण करेगी और भावी संग्राम हम लोगों के लिए कैसा कठिन सिद्ध होगा। बहुत दिनों बाद उन्होंने मुझे बतलाया कि किसानों मे वह किस ढग से प्रचार करते थे—'एक दिन मैं अपने एक मित्र के साथ सडक पर जा रहा था कि इतने में एक किसान उस तरफ आ निकला। वह गाडी पर बैठा हुआ था, जिसमें एक घोडा जुता हुआ था। मैंने उस किसान से कहना शुरू किया कि तुम टैक्स मत दो; सरकारी अफसर तो साधारण जनता को लूटते है। बाइबिल से मैंने कई दृष्टान्त देकर उसे यह समझाना शुरू किया कि विद्रोह करना तुम्हारा कर्तव्य है। किसान पूरा पक्का

और उसने अपने घोडे में एक चावुक जमाया। हम लोग भी उसके पीछे-पीछे भागे। फिर उसने घोड़े को दुलकी चाल चलाना शुरू किया, वस हम लोग भी उसके पीछे उसी चाल से चलने लगे। गरज यह कि उसे टैक्स न देने और विद्रोह करने का उपदेश देना मैंने बंद न किया। आखिरकार इस उपदेश से तंग आकर उसने घोडे को सरपट दौडाया, पर वेचारा घोड़ा कमजोर था। घोडा क्या था एक किसानू टट्टू, जिसे पेट-भर खाना नही मिलता था, इसलिए वहुत तेजी से दौड न सका। इस कारण हम लोगों ने उसे जल्दी ही पकड़ लिया। मतलब यह कि भागते-भागते जबतक हमारी सास न फूली, तबतक हम अपना प्रचार-कार्य करते ही रहे।'

पत्र-व्यवहार का अजीब तरीका

आपस में किस प्रकार पत्र-व्यवहार करते थे उसके बारे में क्रोपॉटकिन लिखते है :

"कुछ दिनो के लिए सर्वेई को एक दूसरे प्रात में जाना पडा। आपस में पत्र-व्यवहार की आवश्यकता हुई। यदि सब बातें साफ-साफ लिखते, तब तो पुलिस फौरन ही पकड लेती। भिन्न-भिन्न बातों के चिह्न बनाकर लिखना सर्वेई को वहुत नापसद था, इसलिए मैंने उनसे कहा कि अच्छा एक तरकीव करें। चिट्ठी इस प्रकार लिखी जाय कि प्रत्येक पाचवा या और किसी नवर का अक्षर सार्थक हो और उन अक्षरों के मिलाने से पूरे वाक्य वन जायं, जिनसे हमारा मतलव पूरा हो जाय। इस प्रकार की लेखन-प्रणाली पहले भी षड्यत्रों में काम मे लाई जा चुकी थी।"

चिट्ठी इस प्रकार लिखी जाती थी :

'Excuse my hurried letter. Come to-night to see me ; to-morrow I shall go away to my sister. My brother Nicholas is worse ; it was late to perform an operation.'

अर्थात्—'माफ कीजिए, जल्दी में हू। आइए, मुझसे शाम को ही मिलिए। कल बहन के यहा रवाना हो जाऊगा। निकोलस की तबीयत और बदतर है। यहा आपरेशन हुआ लेकिन काफी देर में।"

इस पत्र में प्रत्येक पाचवा शब्द ही सार्थक है, शेष बातें योही लिख दी गई है। पाचवे शब्द मिलाकर पढने से यह वाक्य बनता है—'Come to-morrow to Nicholas late.' अर्थात्—'आइए, कल निकोलस के यहा देर में।'

इस ढंग से चिट्ठी लिखना आसान काम न था। क्रोपॉटकिन लिखते है :

"इस प्रणाली से लिखने में परिश्रम काफी पडता था। जो बातें वैसे मामूली तौर पर एक पृष्ठ में लिखी जा सकती थी, उनके लिए हमें पाच-पाच और सात-सात पन्ने लिखने पडते थे। इसके साथ ही अक्ल भी काफी लगानी पडती थी। अनेक बातो की कल्पना करनी पडती थी, जिससे वे शब्द, जिनकी हमें आवश्यकता थी, यथास्थान बिठलाए जा सके। सर्गेई को पत्र-व्यवहार का यह ढग बहुत पसद आया। उसने मुझे ऐसी चिट्ठिया भेजना शुरू किया, जिनमें बडी मनोरजक कहानिया रहती थी और जिनका अत नाटको की तरह अत्यत आश्चर्यमय होता था।

"सर्गेई ने एक बार मुझसे कहा था कि इस प्रकार के पत्र-व्यवहार के कारण मेरी साहित्यिक प्रतिभा जागृत हो गई। अगर किसीमें प्रतिभा हो, तब तो प्रत्येक बात उसके विकास में सहायक ही होती है।'

ग्रामों में क्रांति का प्रचार

"१८७४ की जनवरी या फरवरी में जब मैं [illegible] था, एक आदमी ने मुझसे आकर कहा कि आपसे एक किसान मिलना चाहता है। बाहर जाकर देखा, तो मित्रवर सर्गेई विद्यमान थे। उन्हें पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया था, पर वह उसे चकमा देकर भाग आये थे। सर्गेई [illegible] वह खूब हृष्ट-पुष्ट थे और उनके साथ रोगनाफ नामक [illegible] भी था। [illegible] पर भी काफी ताकतवर था। गावो में वे दोनो [illegible]

करते हुए घूमते थे, और क्राति का संदेश ग्रामीण जनतातक पहुचाते थे। लकड़ी चीरने का काम काफी कठिन था, और उनके हाथ इसके लिए अभ्यस्त भी नही थे, पर वे दोनो इस काम को खूब पसद करते थे। इन दोनों को देखकर कोई भी यह नही ताड सकता था कि ये लकडी चीरने-वाले दरअसल कौन है। पंद्रह दिन तक तो बिल्कुल बे-खटके वे दोनो क्रातिकारी प्रोपेगंडा करते रहे, और किसीको इस बात का शक भी नही हुआ कि आखिर ये है कौन? कभी तो सर्घेई बाइबिल से, जो उसे कण्ठस्थ थी, कुछ वाक्य कहकर ग्रामवासियो को यह धार्मिक उपदेश देता कि क्राति करना तुम्हारा कर्तव्य है और कभी वह अर्थशास्त्र की बातें समझाकर उन्हे गदर करने की सलाह देता। उन दोनो उपदेकों को ग्राम्य जनता ने ईश्वर-प्रेरित धर्म-दूत समझा। किसान लोग बड़े ध्यान से उनकी बाते सुनते थे। उन्हे घर-घर लिये फिरते थे और उनसे भोजन के दाम भी नही लेते थे। कोई पद्रह दिनो में ही उन दोनो लकडी चीरनेवालो ने आस-पास के दस-बीस ग्रामो में खासी हलचल पैदा कर दी। उनकी कीर्ति भी चारो ओर फैलने लगी। किसान लोग—युवक और वृद्ध—खेत और खलिहान पर आपस मे काना-फूसी करने लगे—"अरे भाई, ये तो 'दूत' आगए मालूम होते है।" फिर कहते, "अब क्या है, जमीदारों से जमीन छीन ली जायगी। ज़ार उन्हे पेंशन दे देंगे।" किसान नवयुवक जग और भी जोश में भर गए, और सरकारी पुलिस के सिपाहियो के सामने अकड-अकडकर कहने लगे—"बच्चा, ठहरो जरा। अबकी हमारी पारी है। तुम राक्षसो के शासन का अब अत आ चुका है।"

आखिर उन लकड़ी चीरनेवालो की कीर्ति-कथा एक पुलिस के अधि-कारी के कानो तक पहुची। उसने उन दोनो को गिरफ्तार कर लिया। कितने ही किसानो को गार्ड बनाकर पुलिसवाले उन्हें हेडक्वार्टर की तरफ ले चले। रास्ते मे एक गाव पडा। वहा एक उत्सव मनाया जा रहा था और ग्राम्य जनता खाने-पीने में मस्त थी। ज्योही ये लोग पहुंचे कि किसानो ने कहा—"कैदी लोग है? बहुत वक्त पर आये। आओ, चाचा!" किसान

उन सबको अपने घर ले गए और घर की बनी शराब डटकर पिलाई। पुलिस के गार्डों से भी शराब पीने के लिए कहा गया, वे तो पहले से ही तैयार बैठे थे। उन्होंने खुद तो पी ही, साथ ही यह भी कहा कि इन कैदियों को भी पिलाओ। मर्वेई को भी पीने के लिए कहा गया, पर बर्तन इतना बडा था कि मर्वेई ने बर्तन मुह से लगाकर पीने का बहाना तो किया, पर पी बिल्कुल नही। पुलिसवालों ने खूब डटकर पी। फिर उन्होंने सोचा कि इस हालत में तो पुलिस के अफसर के पास चलना ठीक नहीं होगा। सवेरा होने पर चलेंगे। मर्वेई उनसे मनोरंजक बातचीत करता रहा। सब लोग बडे खुश हुए, और आपस में कहने लगे—'देखो, बेचारे कैसे भले आदमी को पुलिस ने पकड लिया है!' एक नवयुवक किसान ने इशारा किया कि रात के वक्त हम दरवाजा खुला छोड देंगे। मर्वेई और उसका साथी इस इशारे को समझ गए और जब सब लोग सो गए, वे घर से निकल भागे और सवेरे पाच बजते-बजते उस ग्राम से वे तीन मील आगे निकल गए। वहा से एक छोटे-से रेलवे स्टेशन से वे मास्को के लिए रवाना होगए। मर्वेई ने मास्को में ही अपना अड्डा बना लिया और जब सेंटपीटर्सबर्ग के तमाम कार्यकर्ता पकड लिये गए, उस समय मर्वेई का अड्डा आदोलन का मुख्य केंद्र बन गया।"

जनता में प्रचार-कार्य

क्रोपॉटकिन ने शहरो तथा ग्रामो में क्रांतिकारी विचार-धारा फैलाने-वालो का बडा ही सजीव चित्रण किया है। वे लिखते हैं

प्रचारक लोग नाना प्रकार के रूप धारण करके और भिन्न-भिन्न पेशो में काम करने लगे थे। कोई लुहार की दुकान पर काम करता था तो कोई खेत पर और इस प्रकार धनीमानी आदमियो के कप्तान बनके साधन-हीन किसानों तथा मजदूरो के संपर्क में आने लगे थे। मास्को में तो जाहिर हुआ था कि अमीर घराने की लडकियो ने, जो ज्यूरिच विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त कर चुकी थी, कपास के कारखानो में नौकरी कर ली थी और

वह चौदह से सोलह घंटे प्रतिदिन कठिन परिश्रम करती थी। यही नहीं, व फैक्टरियों से संलग्न छोटी-छोटी गंदी कोठरियों मे रहती थी और मामूली मजदूर औरतो जैसी जिंदगी बिताती थी। यह एक महान् आंदोलन था, जिसमे कम-से-कम दो-तीन हजार आदमी अपना पूरा-पूरा समय लगाये हुए थे और इनसे दुगने-तिगुने आदमी भिन्न-भिन्न प्रकार से उन आगे बढ कर काम करनेवालो को पीछे से मदद दे रहे थे। सेंटपीटर्सबर्ग मे काम करनेवाली मंडली इन लोगो मे से कम-से-कम आधे आदमियो से संबंध बनाये हुए थी। हा, उनसे पत्र-व्यवहार गुप्त अक्षरो द्वारा ही हुआ करता था।

क्रांतिकारी साहित्य

रूस में प्रकाशित होनेवाले साहित्य पर कठोर नियंत्रण था। अपने लेख या पुस्तक में समाजवाद का नाम लेने या उसका जिक्र करने की भी मनाही थी। इसलिए विदेश मे अपना प्रेस कायम करने का प्रबंध किया गया। किसानो तथा मजदूरो के लिए छोटी-छोटी पुस्तिकाएं तैयार करनी थी और उनके लिए हम लोगो ने एक साहित्यिक कमेटी बना दी थी, जिसका मैं भी एक सदस्य था। इस कमेटी के पास काफी काम था। ये किताबे और पैमफ्लेट विदेश में छपवाई जाती थी और फिर-फिर गोपनीय ढंग से एक जगह पर जमा करके तत्पश्चात उन्हे भिन्न-भिन्न केंद्रो को भेजना होता था, जहा से वे किसानो तथा मजदूरो मे बटवाई जाती थी। इसके लिए एक विस्तृत संगठन की जरूरत थी और तदर्थ काफी पत्र-व्यवहार तथा यात्राएं भी करनी पड़ती थी। पुलिस की निगाह से बचते हुए अपने में सहानुभूति रखनेवाले पुस्तक-विक्रेताओं तक इन पुस्तको को पहुचाना कोई आसान काम नही था और इसके लिए गुप्त अक्षरो मे काफी पत्र-व्यवहार भी करना पड़ता था। अलग-अलग केंद्रो के लिए अलग-अलग गुप्त अक्षर थे। स्त्रिया इस काम में बहुत सहायता देती थी। इस प्रकार के पत्र-व्यवहार के खाके खींचने में वे रातें गुजार देती थी।

कार्य करने का ढंग

हम लोगो की सभा-समितियो मे सर्वथा भाईचारे का बर्ताव होता था। सभापति, मंत्री इत्यादि की शिष्टाचार युक्त कार्रवाइया हमे सख्त नापसन्द थी। यद्यपि हम लोगो मे कभी-कभी बड़ी गरमागरम बहस होती थी, तथापि हम लोग पाश्चात्य देशो के सभा-संचालन के तौर-तरीको का आश्रय लिये बिना अपना काम चला लेते थे। हार्दिक सच्चाई से काम लेना और विवाद-ग्रस्त विषयो के सर्वोत्तम हल निकाल लेना ही हम सबका उद्देश्य था। किसी भी प्रकार की कृत्रिम या नाटकीय बातचीत या रग-ढग से हमे नफरत थी। भोजन के लिए हम लोगो को मोटी रोटी, ककड़ी, पनीर और हल्की चाय, प्रचुर मात्रा मे, बस यही मिल पाता था। पैसे का बिल्कुल ही अभाव हो, सो बात नही थी। पैसा था, लेकिन हम लोगो के बढते हुए कार्य को देखते अपर्याप्त था, क्योकि चीजो के छपाने मे, किताबो के इधर-उधर भेजने मे, पुलिस जिनकी तलाश मे थी, ऐसे मित्रो के छिपाने मे और नये कार्यक्रमो के प्रारम्भ करने मे बहुत पैसा खर्च हो जाता था।

सफेद-पोशों और मजदूरो की मनोवृत्ति

मेरी सहानुभूति खास तौर पर बुनकरो तथा फैक्टरियो के मजदूरो के साथ थी। सेंटपीटर्सबर्ग मे हजारो ही ऐसे मजदूर थे, जो जाड़ो मे शहर मे चले आते थे और गर्मियो में अपने ग्रामो को लौट जाते थे, जहा वे खेती [illegible] करते थे। इन लोगो के बीच मे हमारे आंदोलन ने जड़ पकड़ ली थी। वे लोग दस-दस, बारह-बारह मिलकर एक कमरा किराये पर ले लेते थे और उसीमे रहते थे। इन्ही कमरो पर पहुचकर हम लोग अपना प्रचार-कार्य करते थे। इन्हे हम लिखना-पढना भी सिखाते थे और तत्पश्चात् इन्हे पढने किताबे बतलाते थे। इन लोगो के पास जाने के लिए हमे किसानो-जैसे कपड़े पहनने पड़ते थे, क्योकि जेण्टिलमैनो की पोशाक मे इन लोगो के पास जाना खतरे से खाली नही था, उससे पुलिस को फौरन शक पैदा हो जाता। कभी-कभी ऐसा होता कि मै जार के महलो मे, जहा मुझे एक [illegible] से मिलने जाना [illegible]

लौटकर अपनी शिष्ट-मडली की पोशाक उतारता और किसानो-जैसे कपडे पह-, कर इन लोगो के पास गंदी वस्तियो में जाता। जव मै उन्हे वतलाता कि विदेशों के मजदूर अपना सगठन कैसे करते है तो वे मेरी वातो को वडे ध्यानपूर्वक मुनते और फिर अत में कहते—हम लोगो को रूस में क्या करना चाहिए? "आप लोग अपना सगठन करके आंदोलन कीजिए। इसके सिवा दूसरा कोई तरीका नही।" फरांसीसी क्रांति के विपय मे हम लोग उन्हे पेम्फलेट दे देते और हमारा यही संदेश होता, "दूसरो तक हमारी वात पहुंचाइए और जव हमारे-जैसे विचारो के आदमियो की तादाद ज्यादा हो जायगी तव कोई दूसरा कार्यक्रम सोचेगे।" वे मजदूर हमारी वातो को भली-भाति समझ लेते थे। यही नही, वे इतने उत्साहित हो जाते थे कि उनके जोश को नियन्त्रित करने की जरूरत पड जाती थी।

सन् १८७४ की पहली जनवरी का दिन मुझे खास तौर पर याद आता है। उसके पहले की रात मुझे सुशिक्षित मडली में गुजारनी पड़ी थी। इन सुशिक्षित सफेदपोशो ने नागरिको के कर्तव्य, देशहित इत्यादि के विपय में वडी लवी चौडी वातें हांकी थी, लेकिन इनसव स्फूर्तिप्रद व्याख्यानो के पीछे एक भावना छिपी हुई थी, वह यह कि अपना हाथ-पैर वचाकर मूजी को कैसे टरकाया जाय! अपने निजी स्वार्थ की रक्षा ही इन लोगो का मुख्य उद्देश्य था, लेकिन किसीमें भी इतना साहस नही था कि खुलकर इस वात को स्वीकार कर ले कि हम उसी सीमा तक काम कर सकते है, जिस हदतक स्वयं हमारा जीवन संकट में न पडे। नीच जाति के आदमी वड़े आलसी है, विकास तो धीरे-धीरे ही होता है, निरर्थक वलिदान से क्या फायदा, वैसे हम तो त्याग करने के लिए उद्यत है, इत्यादि दंभपूर्ण वातें सुनकर मेरे हृदय को वडा दुःख हुआ। दूसरे दिन सवेरे मै जुलाहों की मीटिंग में गया, मेरी पोशाक किसानों-जैसी ही थी, इसलिए उसमें शामिल होने में कोई दिक्कत नही हुई। मेरे साथी ने मेरा परिचय कराते हुए सिर्फ इतना ही कहा—"ये वोरोडिन है—अपने मित्र।" तव उन जुलाहो ने पूछा—"भई वोरोडिन! अपने विदेश-यात्रा के अनुभव हमें सुनाइये।" फिर मैंने उन्हें पाश्चात्य देशो के मजदूर-सगठन, उनके सघर्ष,

कठिनाई, आशा और निराशा के किस्से सुना दिये। बडी दिलचस्पी से उन्होंने सारी बातें सुनी। श्रमजीवी सघो के विषय मे सवाल किये और अन्तर्राष्ट्रीय सघ के उद्देश्यो के विषय में भी पूछताछ की। तत्पश्चात् मुख्य सवाल यह था— "रूस में यदि हम लोग वैसा सगठन करें तो कहा तक सफलता मिलेगी?" मैंने उनसे साफ तौर पर कह दिया, "इस प्रकार के आदोलन सफल न होंगे। नतीजा यह हो सकता है कि हम लोगो को देश-निकाले का दड दे दिया जाय और हम साइबेरिया भेज दिये जाय और शायद आप लोगो को महीनो के लिए जेलखाने की हवा खानी पडेगी, इस अपराध में कि आपने हम लोगो की बातें सुनी।"

मेरी इन बातो से वे तनिक भी भयभीत न हुए। बोले—"आखिर साइबेरिया में सिर्फ रीछ ही नही रहते, आदमी भी रहते है। जहा कुछ आदमी रह सकते है, वहा दूसरे भी रह सकते है। अगर आप भेडियो से डरते है तो जगल में जाने का खयाल ही छोड दीजिए, इत्यादि।

और भविष्य में जब सकट का वक्त आया और इन जुलाहो में से बहुत से पकडे गये, तो करीब-करीब सभीने बडी बहादुरी से काम लिया। उन्होंने हमारी रक्षा की और किसीने भी विश्वासघात नही किया।

मेरी गिरफ्तारी

अगले दो वर्षो मे काफी धर-पकड हुई—राजधानी मे और प्रांतो में भी। हर महीने हमें इस प्रकार के दु खप्रद समाचार मिलते थे कि आज अमुक साथी पकडा गया तो कल दूसरा। सन् १८७४ के अत मे इस प्रकार की गिरफ्तारियो की सख्या और भी बढ गई। पुलिस ने सेंटपीटर्सबर्ग के हमारे अड्डे पर छापा मारा और कई व्यक्तियो को गिरफ्तार कर लिया। पुलिस बडी सतर्क होगई। अगर कोई विद्यार्थी मजदूरो की बस्तियो मे घूमता हुआ दीख पडता तो वह फौरन पुलिस की निगाह मे चढ जाता। हमारी सभाओं के अनेक व्यक्ति पकड लिये गए और सिर्फ ५-६ आदमी ही बच रहे। कुछ दिनो बाद मैंने सुना कि दो जुलाहे पकडे गये है। वे स्वभाव अभिमानी थे,

पर वे मुझे जानते थे—मेरे गुप्त नाम वोरोडिन से भी वाकिफ थे। एक सप्ताह के भीतर मुझे और मेरे एक मित्र को छोड़कर सब पकड़ लिये गए। हम लोगो के पास सेंटपीटर्सवर्ग को छोड़कर भाग जाने के सिवा और कोई चारा न था। पर यह काम हम करना नही चाहते थे। हमारा काम काफी फैला हुआ था। विदेशो मे पेम्फ्लेटो की छपाई होती थी, चोरी-चोरी उन्हें रूस मे लाया जाता था, कितने ही केंद्रो तथा क्षेत्रो पर उन्हे वितरित किया जाता था। चालीस प्रातो मे हमारा जाल फैला हुआ था और इस सगठन मे हमारे दो वर्ष लग गये थे। इनके सिवा खुद सेंटपीटर्सबर्ग मे मजदूरो के बीच काम करनेवाले हमारे चार केंद्र थे और उनमे छोटे-मोटे अनेक कार्यकर्त्ता थे। इन सबको मँझधार मे छोडकर कैसे भागा जा सकता था, जबतक कि इनसे पत्रव्यवहार करने और सबध बनाये रखने का कोई इतजाम न कर लिया जाता। हम लोगो ने दो नये मेबर अपनी मडली मे शामिल किये और उन्हे सारा काम समझाना शुरू कर दिया। सर्ड कौफ ने अपना कमरा छोड दिया और वह अपने मित्रो के यहा रहने लगे—कभी किसीके तो कभी किसीके। मुझे भी अपना मकान छोड़ देना चाहिए था, पर मेरे सामने एक मुश्किल थी—वह यह कि मैंने फिनलैण्ड तथा रूस के एक भौगोलिक विषय पर अपनी रिपोर्ट तैयार की थी और उसे भूगोल-समिति के सामने पेश करना था। इसी कारण मुझे एक सप्ताह के लिए रुक जाना पड़ा। इस बीच अनेक अजनबी आदमी बहाने ढूढ-ढूढकर मेरे मकान के आसपास चक्कर लगाते रहे। इस बीच एक दिन एक जुलाहा जो पकडा गया था, मुझे अपनी गली मे दीख पड़ा, जिससे मै समझ गया कि मेरे मकान पर पुलिस की निगाह है। पर मै बिना उद्विग्न हुए यह सब देखता-सुनता रहा, क्योंकि मुझे अगले शुक्रवार को भूगोल-समिति के सामने अपनी रिपोर्ट पेश करनी थी।

मीटिंग हुई और उसमे काफी उत्साह प्रदर्शित किया गया। मेरे सिद्धात की पुष्टि होगई और मीटिंग मे यह प्रस्ताव रखा गया कि फिजीकल ज्याग्राफी विभाग का प्रधान मुझे बना दिया जाय। वहां जब प्रधान बनाने की बात हो

रही थीं, मैं मन-ही-मन यह सोच रहा था कि आज अपने घर पर सोऊंगा या खुफिया पुलिस के जेलखाने में। बेहतर होता, अगर मैं उस शाम को घर न लौटता। पर मैं पिछले कुछ दिनों के परिश्रम से इतना थक चुका था कि मैंने घर ही जाने की बात सोची। उस रात को पुलिस ने छापा नहीं मारा। उस रात को मैंने वे सारे कागज-पत्र, जिनसे किसीको भी खतरा हो सकता था, जला डाले। अपना बोरिया-बिस्तर बांध लिया और चलने की तैयारी करने लगा। मैंने सोचा कि झुटपुटे के वक्त निकल भागूंगा। ज्योंही कुछ अंधेरा बढ़ा, मेरी नौकरानी ने कहा—"आप दूसरे जीने से बाहर जाइए।" मैं समझ गया कि क्या मामला है। जीने से उतरकर मैं घोड़ागाड़ी में बैठ गया और गाड़ी हंकवा दी। पहले तो मैंने समझा कि जान बची, पर थोड़ी देर में देखता क्या हूं कि एक तेज गाड़ी मेरा पीछा कर रही है। हमारी गाड़ी का घोड़ा कुछ अटका ही था कि वह गाड़ी हमसे आगे निकल गई। उस गाड़ी में मैंने उस जुलाहे की शकल देखी और उसके साथ कोई दूसरा आदमी भी बैठा देखा। उस जुलाहे ने मेरा नाम बोरोडिन लेकर हाथ का इशारा किया। मैंने सोचा कि शायद यह छूट गया है और मुझे कुछ सूचना देना चाहता है। ज्योंही हमारी गाड़ी रुकी, जुलाहे के उस साथी ने जो खुफिया पुलिस का आदमी था, जोर से चिल्लाकर कहा—"मिस्टर बोरोडिन, प्रिंस क्रोपॉटकिन, मैं तुम्हें गिरफ्तार करता हूं।" पुलिसवालों को उसने पहले से इशारे से बुला लिया था। निकल भागना असंभव था। उस खुफिया पुलिसवाले ने मुझे एक कागज दिखलाया, जिस-पर पुलिस की मुहर थी। उसने मुझसे कहा, "आपको अपनी सफाई देने गवर्नर जनरल के यहां चलना है।"

मैं समझ गया कि अबतक इन लोगों को मेरे बारे में कुछ शक था कि बोरोडिन मैं ही हूं, पर जुलाहे की बात पर मेरे ध्यान देने के कारण उनका यह भ्रम दूर होगया। ये लोग मुझे खुफिया पुलिस के हेडक्वार्टर पर ले गये।

इसके बाद क्रोपॉटकिन ने खुफिया विभाग की जिरह का मनोरंजक वर्णन किया है, जिसे हम विस्तार-भय के कारण नहीं दे सकते।

पीटर के दुर्ग में

क्रोपॉटकिन उस बदनाम पीटर के किले मे रक्खे गये, जहा रूस के कितने ही प्रसिद्ध-प्रसिद्ध व्यक्ति पहले रक्खे जा चुके थे। यह वही किला था, जिसका नाम रूस मे दबी जबान से लिया जाता था। इसी किले मे प्रथम पीटर ने अपने लड़के की हत्या की थी। इसीमे रानी तारकेनोवा एक गुफा म बद रखी गई थी, जिसमे नदी में पानी आ जाने के कारण पानी भर गया था। इसी दुर्ग मे द्वितीय कैथेराइन ने बीसियो आदमियो को मरवा डाला था। गरज यह कि पिछले एक सौ सत्तर वर्षो में यह किला अपने घोर अत्याचारो के लिए रूसभर में बदनाम हो चुका था। न जाने कितने व्यक्तियो का यहा वध किया गया, कितनो पर शारीरिक जुल्म, कितने ही धीरे-धीरे मौत के घाट उतरे और कितने ही उन अंधकारमय नम कोठरियो में पागल होगये। इसी किले मे रूस मे प्रजातन्त्र का झंडा सर्व-प्रथम फहराने वाले डिसैम्ब्रिस्ट लोग बंद रहे थे, इसीमें कवि राइलीफ, शैवलैंको, डोस्टोवस्की, बाकूनिन, चर्नीशैवस्की, पिसारैफ तथा रूस के अनेक महान लेखको को जेलखाने का दंड दिया गया था। यही काराकोजोफ को फासी दी गई थी।

क्रोपॉटकिन ने आत्मचरित मे लिखा है—"इसी किले मे नैचेफ, जिसे स्विटजरलैण्ड ने रूस को सौंप दिया था, बद है और उसका कभी छुटकारा न होगा। जार के द्वारा किसी अज्ञात अपराध के लिए दो आदमी और भी इसी किले मे बंद है और जिंदगी भर यही रहेंगे, शायद उनका यही अपराध है कि जार के महलो की किसी गोपनीय बात का उन्हें पता है। इन सब दुर्घटनाओ की छाया मेरी कल्पना दृष्टि के सामने घूमने लगी, पर खास तौर पर ख्याल आया मुझे बाकूनिन का, जिन्हें सन् १८४८ में दो वर्ष के लिए आस्ट्रिया के एक किले में बद कर दिया गया था, यही नहीं, जिन्हें कमर में जजीर बांध कर एक दीवार से जकड़ दिया गया था और तत्पश्चात् जार की रूसी सरकार को सौंप दिया गया था और जो छ. वर्ष इसी किले मे रहे थ, और जो जार की मृत्यु के बाद ही छोड़े गये थे। बाकूनिन जब इस किले

से छूट थे तो वे अपने उन साथियो मे, जो बाहर स्वतंत्र रहे थे, कहीं अधिक स्वस्थ और शक्तिशाली थे और उनमे कही अधिक ताज़गी थी। मैने मन मे कहा—"जब बाकूनिन इस किले मे से जिंदा निकल गये तो मै भी जिंदा निकलूगा, यहा मरूगा नही।.....चारो तरफ सन्नाटा था। कोई आवाज सुनाई नही पडती थी। मै अपने स्टूल को खिडकी के पास खींच लाया और उस पर खडे होकर बाहर दिखाई देनेवाले आकाश के छोटे-से टुकडे को देखने लगा। मै किसी भी ओर से कोई आवाज सुनना चाहता था, पर कहीं से कोई भी ध्वनि नही आ रही थी। इस व्यापक सन्नाटे मे मै तंग आ गया और मैंने कुछ गाने की कोशिश की, पहले कुछ धीमे स्वर मे, फिर पीछे कुछ जोर से साथ। मेरी कोठरी के छेद मे से सिपाही ने आवाज दी, "श्रीमान, गाना न गाइए" मैने जवाब दिया, "मै जरूर गाऊगा।" सिपाही ने कहा, "हर्गिज नहीं।"

मैने कहा—"तुम चाहे जो कहो, मै जरूर गाऊगा।" तत्काल जेल का अध्यक्ष आया और उसने मुझसे यही कहा कि अगर तुम गाना गाते रहोगे तो मुझे किले के शासक से रिपोर्ट करनी पडेगी। मैने उत्तर मे कहा—"मेरा गला बैठ जायगा और फेफडे भी खराब हो जायगे, अगर मै बोलूगा नहीं और गाऊगा नही।" इसपर जेल के अध्यक्ष ने कहा—"तब आप बहुत धीमे स्वर में गा सकते हैं—खुद अपने लिए।"

लेकिन यह सब निरर्थक था। कुछ दिनो बाद मेरी गाने की इच्छा ही जाती रही। सिद्धात की रक्षा के लिए मैंने गाने के क्रम को जारी रखने का प्रयत्न भी किया, पर वह चल नहीं सका।

मैने अपने मन मे कहा:

"सबसे मुख्य बात यह है कि मै अपनी शारीरिक शक्ति कायम रखूगा, मै बीमार हर्गिज नही पडूगा। मै ऐसी कल्पना करूगा कि मुझे उत्तरी ध्रुव की यात्रा करनी पडी है और एक झोपडी मे दो वर्ष बिताने पड रहे है। मै काफी व्यायाम करूगा, जमनास्टिक करूगा और ऐसी कोशिश करूगा कि चारो ओर का वातावरण मुझे बीमार न डाल दे। अपनी कोठरी के एक कोने से दूसरे कोने तक दस कदम होते है, अगर मै डेढ सौ बार इधर-से-उधर [illegible]

तो दो तिहाई मील का टहलना हो ही जायगा। इस ढग से मै पांच मील रोज टहलूंगा। दो मील भोजन के पहले, दो बाद को और एक सोने के पूर्व।.... मैने दवात, कलम और कागज के लिए प्रार्थना की, पर वह अस्वीकृत कर दी गई। इस किले मे बंद जेलियों को कलम-दावात तभी मिल सकती थी, जब स्वय रूसी सम्राट जार से उसके लिए आज्ञा ले ली जाय। पर मेरे भाई अलेक्जेंडर ने मेरे लिए कलम दावात की अनुमति मगा ली थी। एक दिन मुझे एक गाडी मे बिठलाकर खुफिया विभाग के कार्यालय को ले जाया गया, जहां दो पुलिस के अफसरो के सामने मुझे अपने बड़े भाई से मिलना था। जब मै पकडा गया, उस समय मेरे बडे भाई ज्यूरिच में थे। अपने यौवन के आरभ से ही एलेक्जेंडर की इच्छा विदेश जाने की रही थी, जहा कि आदमी स्वाधीनता-पूर्वक विचार कर सकते है, मनचाही किताबे पढ सकते है और स्वतत्रता के साथ अपनी सम्मति भी प्रकट कर सकते है। रूस के दमघोंटू वातावरण से उसे नफरत थी। सच्चाई—बावन तोले पाव रत्ती सच्चाई और हद दर्जे की स्पष्टवादिता, ये मेरे बडे भाई के गुण थे। वह किसी भी शकल में धोखा या व्यर्थाभिमान को बिल्कुल सहन नही कर सकता था। रूस मे लिखने बोलने की स्वाधीनता का अभाव था और साधारण जनता जुल्म के सामने सिर झुका देती थी और रूसी लेखक दबी जुबान से लिखने के अभ्यस्त हो चुके थे। ये सब बाते मेरे बडे भाई के स्वभाव के सर्वथा विपरीत थी। इसलिए उन्होने स्विटजरलैण्ड जाने का निश्चय कर लिया था। इसके सिवा उनके दो बच्चे सैण्टपीटर्स बर्ग मे मर चुके थे। एक तो कुछ ही घंटे में हैजे से और दूसरा क्षय रोग से। इसलिए राजधानी मे रहना भी उसे नापसद था। मेरे भाई ने हम लोगो के आदोलन मे हिस्सा नही लिया था और जनता द्वारा विद्रोह की भावना में उनका विश्वास भी नही था।...वे स्विटजरलैंड के ज्यूरिच नगर में बन गये थे, पर जब उन्होने मेरे पकडे जाने की खबर सुनी तो वे अपना सब काम छोडकर सेंट पीटर्सबर्ग चले आये। बातचीत के समय हम दोनों ही काफी उत्तेजित थे, मेरे भाई तो और भी ज्यादा। पुलिसवालो की वर्दी मे ही उन्हें नफरत थी—रूस में स्वाधीन विचारो का गला घोटनेवाले पुलिसवालो से—

और उनकी मौजूदगी मे वे अपनी यह सम्मति प्रकट भी कर देते थे। उनके रूस में वापस आने से मेरे हृदय में नाना प्रकार की शकाएं उठ खड़ी हुई थीं। उनके ईमानदार चेहरे और प्रेम-पूर्ण नेत्रो को देखकर मुझे हर्ष हुआ था और यह जानकर खुशी हुई थी कि वे मुझसे महीने मे एक बार मिल सकेंगे, पर मेरी हार्दिक इच्छा यही थी कि वे इस जगह से सैकड़ो मील दूर रहे। मुझे यह आशका थी कि कभी-न-कभी वे भी पुलिस की निगरानी मे इसी जेलखाने मे लायें जायगे। मेरी अतरात्मा कह रही थी—"अरे! शेर की मांद मे क्यो चले आये? जल्दी-से-जल्दी इस देश को छोड जाओ।" पर मैं जानता था कि जबतक मैं जेल में हूं, तबतक मेरा बडा भाई रूस छोड़ेगा नही।

मेरे बडे भाई जानते थे कि कुछ काम न कर सकने के मानी होंगे मेरी मौत। इसलिए उसने पहले से ही अर्जी भेज रखी थी कि मुझे कलम, दवात, कागज मिल जाय। भूगोल-समिति चाहती थी कि मैं अपनी किताब को समाप्त कर दूं। मेरे भाई ने विज्ञान-समिति को भी इस मामले मे दिलचस्पी लेने का अनुरोध किया। मेरे जेल में दो-तीन महीने रहने के बाद एक दिन जेल के शासक ने आकर मुझे हुक्म सुनाया कि सम्राट ने मुझे अनुमति प्रदान कर दी है कि शाम तक मैं लिखने का काम कर सकता हूं।

भाई की गिरफ्तारी

सबसे अधिक कष्टप्रद चीज थी चारो ओर का सन्नाटा।—कब्रिस्तान-जैसी शांति—जिसे तोडना असभव था। बात करने के लिए कोई आदमी नही था। एक महीना गुजरा, दो गुजरे, तीन गुजरे, यहांतक कि पांच महीने इसी सन्नाटे मे गुजर गये। जेल का अध्यक्ष सवेरे आता था। वह नित्य यही पूछता—"तमाखू या कागज तो नही चाहिए?" मैं उसे बातों में लगाने की कोशिश करता, पर वह चुप रह जाता। यह इधर-उधर निगाह डालता, मानो मुझसे यह कहना चाहता था कि "मेरे ऊपर भी निगाह रक्खी जा रही है!" केवल कबूतर ही ऐसे जीव थे, जो मुझसे बातचीत करने मे नहीं डरते थे। वे सवेरे और शाम को मेरी खिड़की पर आकर मेरे हाथ से दाना चु

जाते थे। ....जाड़े के दिनो मे मेरे कमरे में इतनी नमी होगई कि मुझे गठिया की बीमारी होगई। फिर भी मै प्रसन्न था, क्योकि मै लिखने-पढ़ने का काम कर सकता था। पांच मील रोज टहलने का अपना नियम मैंने बराबर जारी रखा था, पर कुछ दिनो बाद मेरी कोठरी पर दुख की घटा छा गई। मेरे बड़े भाई को गिरफ्तार कर लिया गया। मेरी अंतिम मुलाकात उनके साथ दिसंबर १८७४ मे हुई थी। वे और मेरी बहन हेलेनी मुझसे मिलने आये थे। पुलिस का अफसर मौजूद था। बहुत दिनो के बाद जब जेल में अपने सगे-संबंधियो से मिलना होता है तो कैदी तथा उसके रिश्तेदार दोनो ही उत्तेजित हो जाते है। अपने प्रेमियो को इतने निकट पाकर और उनकी चिर-परिचित आवाज को सुनकर बड़ा आनद होता है। पर साथ-ही-साथ यह अनुभूति भी कि यह मिलन क्षण स्थायी है। खुफिया पुलिस के सामने कोई निजी बातचीत तो हो ही नही पाती। मेरे भाई और बहन दोनो ही मेरी तदुरुस्ती के बारे में बहुत चिंतित थे, क्योकि जाड़े का असर मेरे स्वास्थ्य पर स्पष्टतया दीख पड़ने लगा था।

इस बातचीत के एक सप्ताह बाद पोलाकोफ का एक पत्र मेरे पास आया कि भविष्य में वे मेरी किताब के प्रूफ देखा करेगे। मै तो बडे भाई से पत्र की आशा कर रहा था। मुझे शक होगया कि शायद मेरा भाई पकडा गया होगा। मेरे-जैसे अविवाहित आदमी के लिए गिरफ्तारी तो एक व्यक्तिगत कठिनाई और तकलीफ थी, पर मेरा भाई तो विवाहित था, उसे अपनी पत्नी से बहुत प्रेम था और अपने बच्चे पर भी वे दोनो बहुत मुहब्बत रखते थे, क्योंकि उनके पहले दो बच्चे मर चुके थे। मेरी चिंता का क्या पूछना! मै सोचता था कि आखिर मेरे बड़े भाई को क्यों पकडा गया! उसने क्या जुर्म किया होगा? सप्ताह के बाद सप्ताह बीत गये, पर मुझे कोई भी खबर नही मिली। बहुत दिनो पीछे मालूम हुआ कि उसे लदन के एक पत्र फोरवार्ड को एक चिट्ठी भेजने के अपराध मे गिरफ्तार किया गया था। लैवराफ नामक एक रूसी सज्जन लदन मे इस समाजवादी पत्र के सम्पादक थे और मेरे बडे भाई ने उन्हींको एक खत भेजा था, जो बीच मे ही पकड लिया गया। मेरे भाई ने

उस पत्र में मेरे स्वास्थ्य के विषय में लिखा था, बहुत-सी गिरफ्तारियों की चर्चा की थी और रूसी सरकार के ज़ालिमाना शासन के प्रति घृणा प्रदर्शित की थी। बस, इसी जुर्म मे उसकी तलाशी ली गई और उसे गिरफ्तार कर लिया गया।

मेरे भाई को खुफिया पुलिस ने कई महीने तक हवालात में रक्खा। मेरे भाई के बच्चे को क्षय होगया था, वह मरणासन्न था। डाक्टर ने कह दिया था कि वह बस दो-चार दिन का मेहमान है। मेरे बड़े भाई ने अपने दुश्मनों से कभी किसी रियायत के लिए प्रार्थना नही की थी, लेकिन इस बार मृत्यु के मुख मे जानेवाले पुत्र के प्रेम ने उसे मजबूर कर दिया और उसने अपने बच्चे को देखने के लिए घंटेभर की मोहलत मांगी, पर पुलिस ने उसे अस्वीकार कर दिया। बच्चा चल बसा और उसकी मृत्यु ने मेरी भाभी को पागल-सा बना दिया। इसके बाद मेरे भाई को देश-निकाले का दंड दे दिया गया। वे साइबेरिया भेज दिये गए, जहा वे १२ वर्ष रहे और जीवित न लौटे।[1]

ज़ार के भाई का आगमन

एक दिन अकस्मात ज़ार के भाई मेरी कोठरी मे पधारे और आते ही उन्होने कहा, "गुड डे क्रोपॉटकिन।" वे मुझे निजी तौर पर जानते थे और उन्होने चिर-परिचित स्वर मे मुझसे पूछा :

"क्रोपॉटकिन, भला यह कैसे मुमकिन हुआ कि तुम्हारे-जैसा प्रतिष्ठित आदमी, जो ज़ार का पार्षद रह चुका हो, इस चक्कर मे आ फंसा ?"

---

[1] प्रिंस क्रोपॉटकिन ने आगे चलकर आत्मचरित्र मे अपने [illegible] की मृत्यु पर जो शब्द लिखे है, वे अत्यन्त संयत है। दोनो भाई [illegible] करते थे और अपने अग्रज की मृत्यु से [illegible] लगा होगा। पर उन्होने सिर्फ इतना ही लिखा है, '[illegible] महीनो दुख की घटा छाई रही और [illegible] प्राणी का जन्म हुआ, जिसने उन घटा मे कुछ [illegible]। [illegible] का नाग मेरे भाई पर ही [illegible]।' [illegible] अभी जीवित है और [illegible]।

मैंने उत्तर दिया—"हर आदमी के विचार अलग होते हैं।"

"विचार ! तो आपके विचार-क्रांति को उभारने के पक्ष मे थे ?" जार के भाई ने पूछा।

मै इसका क्या जवाब देता ? यदि मै 'हा' कहता तो उसका मतलब यह होता कि जिस आदमी ने मजिस्ट्रेट के सामने अपना अपराध स्वीकार नही किया था, ज़ार के भाई के सम्मुख अपना कसूर कबूल कर लिया। और अगर मैं 'न' कहता तो वह सरासर झूठ होता। इसलिए मै चुपचाप खड़ा रहा। ज़ार के भाई मुझे चुप देखकर बोले :

"हां, तो जनाब अपने कारनामों से अब शर्मिदा है ?" इस बात से मुझे क्रोध आगया और मैंने कहा, "मुझे जो कुछ कहना है, मैंने जाच करनेवाले मजिस्ट्रेट से कह दिया है, मै उनमे कुछ भी जोड़ना नही चाहता।'

फिर वे बोले·

"अरे भई क्रोपाटकिन, मै तुमसे कोई जाच करनेवाले मजिस्ट्रेट की हैसियत मे थोड़े ही बात कर रहा हूं। मैं तो एक प्राइवेट आदमी की हैसियत से वार्तालाप कर रहा हूं।"

उस वक्त मेरे मन में एक बात आई। क्यों न जार के सामने उनके भाई की मार्फत रूस की दुर्दशा के, किसानो के सर्वनाश के, अफसरों की हिमाकत के और शीघ्र ही आनेवाले भयंकर अकाल के समाचार पहुंचा दू ? शायद उससे जार पर कुछ प्रभाव पडे। फिर तुरंत ही मैंने मन में कहा, "ये सब फालतू बातें हैं, उनसे कुछ भी कहना बेकार है। गरीब जनता की दुर्दशा से वे भली भाति परिचित है और मेरे निवेदन से उनमें कुछ भी परिवर्तन न होगा।

तत्पश्चात् जार के भाई ने मुझे और बातो मे उलझाने की कोशिश की और मै ताड गया कि वह मुझसे अपराध कबूल कराना चाहता है। आखिर तंग आकर मुझे कहना पड़ा—"जनाब, मैं अपने जवाब मजिस्ट्रेट के सामने दे चुका हू।" यह सुनकर जार के भाईसाहब मेरी कोठरी छोडकर चल दिये।

× × ×

इसके बाद प्रिंस क्रोपॉटकिन ने अपने जेल से भागने का जो रोमांचकारी वृत्तांत लिखा है, उसे ज्यों-का-त्यों अगले अध्याय में दिया जाता है।

: ३ :

मैं जेल से कैसे भागा ?

दो साल बीत चुके थे। मेरे साथियों में से कई मर चुके थे, बहुत-से पागल होगए थे; लेकिन हमारे मुकदमे की सुनवाई की कोई चर्चा ही नही थी ! मेरा स्वास्थ्य भी दूसरे वर्ष का अत होते-होते गिरने लगा था। लकडी का स्टूल (जिससे मैं कसरत करता था) भारी लगने लगा और पाच मील का टहलना मानो बडा लवा सफर ! चूकि किले मे हम लोग साठ कैदी थे और जाडो में दिन छोटे होते थे, हममे से प्रत्येक तीसरे दिन सिर्फ बीस मिनट के लिए बाहर टहलने ले जाया जाता था। मैंने अपनी शक्ति को बनाए रखने की भरसक कोशिश की थी, लेकिन पूरे साल उत्तरी ध्रुव की सर्दी में रहने का असर होना ही था। साइबेरिया की यात्रा के बाद मेरे शरीर में रक्त-रोग के जो लक्षण प्रकट होने लगे थे, वे अब कोठरी की नमी और अधेरे के कारण पूरी तरह से व्याप्त होगए। इस तरह की जेल की उस भयकर बीमारी का मेरे शरीर पर पूरा-पूरा असर होगया।

आखिर १८७६ के मार्च अथवा अप्रैल में हमें बताया गया कि तीसरे दस्ते (खुफिया पुलिस) ने प्रारभिक छान-बीन पूरी कर ली है और हमारा मुकदमा न्यायाधीशो के पास भेज दिया गया है। इसलिए हम अब कचहरी के पासवाली जेल में भेज दिये गए। यह जेल चार मजिल की एक बडी भारी इमारत थी, जिसमें कोठरी-ही-कोठरी थी। यह फ्रास और बेलजियम के कारागारों के नमूने पर हाल ही में बनी थी। प्रत्येक कोठरी में आगन की तरफ एक खिडकी थी और लोहे के छज्जो की ओर एक दरवाजा। चारो मजिलों के ये छज्जे लोहे के एक जीने से मिले हुए थे।

हममें से अधिकाश को इस जेल मे आना अच्छा लगा। यहा उस किले से कही अधिक चहल-पहल थी और बाहर के आदमियो से पत्र-व्यवहार,

अपने रिश्तेदारो से मिलने अथवा आपस में बातचीत करने की सुविधा भी अधिक थी। बिना किसी रोक-थाम के दीवारो पर ठुक-ठुक जारी रहती थी। इसी तरह मैंने अपने पडोसी युवक को पेरिस-कम्यून का सारा इतिहास सुना दिया, पर इसमे लगभग एक सप्ताह लग गया।

लेकिन मेरा स्वास्थ्य और भी खराब होगया। उस तग कोठरी का, जो एक कोने से दूसरे कोने तक सिर्फ चार कदम थी, संकीर्ण वातावरण मुझे असह्य था। जैसे ही भाप की नलिया चालू की जाती, वह बर्फ-जैसी ठडी कोठरी एकदम हद से ज्यादा गरम हो जाती। कोठरी मे टहलने के लिए जल्दी-जल्दी मुडना पडता था, इसलिए थोड़ी देर मे ही चक्कर आने लगते और दस मिनट की खुली हवा की कसरत भी, आगन तंग होने के कारण, स्फूर्तिप्रद नही होती थी। जेल का वह डाक्टर, जिसके विषय मे जितना ही कम कहा जाय, उतना ही अच्छा, 'अपनी जेल में' 'रक्त-रोग' का नाम भी नही सुनना चाहता था।

मुझे घर मे खाना मगाने की अनुमति मिल गई थी, क्योंकि मेरे एक रिश्तेदार वकील इस जेल के नजदीक ही रहते थे। लेकिन मेरी पाचन-क्रिया इतनी खराब होगई थी कि मुश्किल से रोटी का छोटा टुकडा और एक-दो अडे खा पाता। मेरा स्वास्थ्य दिन-पर-दिन गिरने लगा और लोग कहने लगे कि अब मैं बहुत दिनों तक जीवित नही रह सकूगा। अपनी कोठरी मे जाने के लिए जब मैं जीना उतरता था, तो मुझे दो-तीन बार रुकना पडता था। मुझे याद है कि एक वृद्ध पहरेदार सिपाही ने मुझसे कहा था—"दुख है कि तुम इस बसत के आखिरतक न बच सकोगे।"

मेरे रिश्तेदार अब अत्यंत चिंतित होगए। मेरी बहन हेलेन ने मुझे जमानत पर छुडाने का प्रयत्न किया; लेकिन शूबिन (अफसर) ने व्यग्य मे मुसकराते हुए उत्तर दिया—"अगर तुम डाक्टर का लिखा हुआ यह सर्टी-फिकेट ले आओ कि तुम्हारा भाई दस दिन के भीतर मर जायगा, तो मैं उसे छोड़ दूंगा।" मेरी बहन यह जवाब पाकर कुर्सी परसे धड़ाम मे गिर गई और अफसर के सामने ही सिसकने लगी, जिससे उस अफसर को संतोष ही हुआ

होगा ! लेकिन अंत में उसने अपनी यह प्रार्थना मंजूर [illegible] इलाज सेंटपीटर्सबर्ग में फौजी अस्पताल के सबसे बड़े [illegible] होना चाहिए। इस वृद्ध होशियार डाक्टर ने बहुत ही अच्छी तरह [illegible] और वह इस निर्णय पर पहुंचा कि मुझे कोई भयंकर शारीरिक बीमारी नहीं, [illegible] शुद्ध वायु न मिलने के कारण रक्त-रोग होगया है। उसने मुझे [illegible]—"केवल शुद्ध वायु की ही तुमको जरूरत है।" थोड़ी देर के लिए वह [illegible] में रहा और तत्पश्चात् उसने निश्चयपूर्वक कहा—"ज्यादा [illegible] है। तुम्हें किसी भी हालत में यहां न रहने दिया जाना चाहिए, इसलिए [illegible] भेजना ही है।"

दस दिन बाद मुझे एक फौजी अस्पताल में भेज दिया गया। [illegible] सेंटपीटर्सबर्ग के बाहर बना था। इसमें बीमार अफसरों और [illegible] के लिए एक छोटी जेल भी थी। मेरे दो साथी, जब यह [illegible] कि वह शीघ्र ही तपेदिक से मर जायंगे, इसी जेल में भेजे गए थे। [illegible] मेरी तंदुरुस्ती ठीक होने लगी। मुझे फौजी गार्ड के कमरे के पास [illegible] कमरा मिला। कमरे में दक्षिण की तरफ [illegible] थी। खिड़की के सामने एक सड़क थी, जिसके दोनों तरफ [illegible], और सड़क के उस पार खुली जगह थी, जहां दोनों तरफ [illegible] रोगियों के रहने के लिए छोटे-छोटे कमरे बने थे। [illegible] घंटेतक ये बढ़ई मिलकर गाना गाते थे। [illegible] तैनात था, सड़क पर पहरा देता रहता था।

मैं खिड़की को दिनभर खुली रखता [illegible] नसीब नहीं हुई थी, मजे लिया करता। [illegible] तरह सांस लेने का अवसर मिला और [illegible] हल्का खाना पचा लेता, ताकत भी [illegible] फिर नए उत्साह से आरंभ कर दिया। [illegible] का दूसरा भाग किसी भी तरह [illegible] ही लिख डाला—यह बाद को [illegible]।

किले मे मैंने एक साथी से, जो इस अस्पताल मे रह चुका था, सुना था कि यहा से भाग जाना बहुत मुश्किल नही है। शीघ्र ही मैंने अपने मित्रों को यहां आने की सूचना दे दी। लेकिन भागना उतना आसान नही था, जितना मेरे दोस्तो ने मुझसे कह रखा था। मेरा पहरा और भी ज्यादा कड़ा कर दिया गया और मेरा कमरे से बाहर निकलना भी बंद कर दिया गया। अस्पताल के सिपाही और संतरी यदि कमरे में आते, तो कभी एक या दो मिनट से ज्यादा नही ठहरते थे।

मित्रो ने मेरे छुटकारे के लिए कई-एक योजनाएं बनाई। कुछ तो उनमें अत्यंत मनोरंजक थीं। उदाहरण के लिए एक योजना यह थी कि मैं खिड़की के लोहे के सींकचे काट लू। फिर किसी बरसात की रात को, जब संतरी अपने सदूक में झपकी ले रहा हो, दो मित्र पीछे से आकर इस संदूक को इस होशियारी से उलट दें कि उसे चोट भी न लगे और वह संदूक से ढंक जाय! और इसी बीच मैं खिडकी मे बाहर कूद जाऊं! लेकिन अचानक ही इससे अच्छी तरकीब निकल आई।

"बाहर टहलने की अनुमति मांगो।"—एक सिपाही ने धीरे-से मुझसे कहा। मैंने तदनुसार प्रार्थना की। डाक्टर ने मेरा समर्थन किया और हर रोज तीसरे पहर चार बजे के लगभग मुझे टहलने की आज्ञा मिल गई।

उस पहले दिन को, जब मैं टहलने निकला, मैं कभी नही भूलूंगा। निकलते ही मैंने देखा कि करीब २०० गज लंबा और १५० गज चौडा हरी घास का आंगन है। फाटक खुला रहता और उसमें से अस्पताल, सड़क और उसके राहगीर दीखते थे। जब मैं जेल की सीढ़ियो से उतरता तो आंगन और उस फाटक को देखते ही रह जाता, मानो पैर ही रुक गए हों! आंगन में एक तरफ जेल थी—करीब १०० गज लंबी छोटी इमारत थी, जिसके दोनों तरफ संतरियो के छोटे-छोटे संदूक थे। दोनो संतरी जेल के सामने इधर-से-उधर चक्कर लगाते रहते और इस तरह घास पर एक पगडंडी ही बन गई थी। मुझसे कहा गया कि मैं इसी पगडंडी पर टहला करूं। चूंकि दोनों संतरी भी इसीपर टहलते रहते थे, इसलिए मेरे और किसी संतरी के

बीच का फासला कभी १०-१२ गज से ज्यादा न रहता, और लगातार के तीन सिपाही सीढ़ियों पर बैठकर चौकसी करते रहते।

इस बड़े अहाते की दूसरी ओर जलाऊ लकड़ी गाड़ियों से उतारी जा रही थी और कई किसान उसे दीवार के सहारे लगा रहे थे। अहाते के चारों तरफ मोटे तख्तों की दीवार थी और उसका फाटक गाड़ियों के आने-जाने के लिए खुला रहता था। यह खुला फाटक मुझे बहुत अच्छा लगता। मन में सोचता, "मुझे इस तरफ दृष्टि नहीं गड़ानी चाहिए।" फिर भी मैं उसी तरफ देखता रहता! पहले दिन जब मुझे कोठरी में वापस पहुंचाया गया तो गुप्त बाहर के मित्रों को कांपते हुए हाथों से अत्यन्त अस्पष्ट अक्षरों में मैंने लिखा—"इस समय इशारे की भाषा में लिखना असम्भव-सा प्रतीत होता है। यहां से भागना इतना आसान लगता है कि बुखार-जैसी कपकपी मालूम होती है। आज ये लोग मुझे बाहर आंगन में टहलाने ले गए थे। वहां फाटक खुला था और नजदीक कोई संतरी भी न था। उस फाटक से मैं निकल भागूंगा, यहां के संतरी मुझे पकड़ नहीं सकेंगे।" और फिर मैंने अपने भागने की तरकीब का खुलासा लिखा—"एक महिला को खुली गाड़ी में अवश्य होना है। वह गाड़ी से उतरे। गाड़ी फाटक से लगभग ५० कदम की दूरी पर खड़ी रहे। फाटक के बाहर एक आदमी टहलता रहे। जब चार बजे मैं टहलने के लिए निकाला जाऊं, तो थोड़ी देर हाथ में टोप लिए रहूंगा। वह आदमी इसका मतलब समझे कि यहां मेरी तैयारी है। फिर तुम लोगों को इशारा करना है कि 'सड़क साफ है'। बिना तुम्हारे इशारे के मैं नहीं भागूंगा, और एक दफा फाटक से बाहर हो जाऊं तो गिरफ्तार नहीं होना है। यदि आप लोग सामने का हरा बंगला, जो यहां से साफ दीखता है, किराये पर ले लें और उसकी खिड़की से इशारा कर दें, और यदि यह सम्भव न हो तो [illegible] इशारा रोशनी या आवाज से करना, जैसे गा [illegible] किसी [illegible] कर दे। इससे भी बेहतर होगा कि कोई गाना होता रहे [illegible] होगा कि सड़क साफ है। संतरी सिपाही दूर से ही [illegible] लेकिन किसी तरह मैं उनसे १०-५ कदम आगे ही रहूंगा। [illegible]

में झपटकर बैठ जाऊंगा और फिर हम लोग भाग जायगे। अगर इस बीच संतरी ने गोली मार दी, तो फिर चारा ही क्या है ? उससे बचना अपनी सूझ से बाहर है। फिर यहां जेल के भीतर निश्चित मौत के मुकाबले में यह खतरा कुछ बुरा तो है नहीं।"

कई सुझाव और भी दिये गए; लेकिन आखिर यही तरकीब स्वीकृत हुई। हमारे मित्रो ने तैयारिया शुरू कर दी। इसमे कुछ ऐसे सज्जनों ने भी भाग लिया, जो मुझे बिल्कुल न जानते थे। फिर भी उनका जोश ऐसा था, मानो उनके अत्यंत प्रिय मित्र का छुटकारा होने जा रहा हो। लेकिन इस उपाय मे कुछ मुश्किलें थी और समय कम रह गया था। मै खूब मेहनत करता, राततक लिखता रहता; लेकिन फिर भी मेरा स्वास्थ्य अच्छा होने लगा—इतनी जल्दी कि स्वय मुझे आश्चर्य होता। जब मै पहले दिन आगन मे लाया गया था तो धीरे-धीरे चलने मे भी थकान मालूम होती थी और अब मै दौड सकता था ! लेकिन मै तो अब भी उसी तरह धीरे-धीरे टहलता था, वरना मेरा टहलना ही बद कर दिया जाता। डर लगता रहता कि कही मेरी स्वाभाविक फुर्ती सारा भेद ही न खोल दे ! और इस बीच मेरे साथियो को इसके लिए बहुत-से आदमी जुटाने थे, एक तेज घोडा और अनुभवी गाडीवान ढूंढना था और ऐसी बीसियो बाधाओ का भी ख्याल करना था, जो इस तरह के षड्यत्र मे तत्काल उपस्थित हो जाती है। इनसब तैयारियो में लगभग एक माह लग गया और इस बीच किसी भी दिन मुझे पुरानी जेल मे भेजा जा सकता था।

आखिर भागने का दिन निश्चित होगया। पुराने रिवाजो के अनुसार २९ जून सत पीटर और संत पाल का दिन है। मेरे मित्रों ने अपने षड्यंत्र में थोडी भावुकता का पुट देकर मेरे छुटकारे के लिए इसी दिन को निश्चित किया ! उन्होंने मुझे सूचित कर दिया था कि जब मै अपनी तैयारी का इशारा करूंगा, तो वे एक लाल गुब्बारा उडाकर मुझे जता देगे कि बाहर सब ठीक है। फिर एक गाडी आवेगी, और आखिर मे एक गाना होगा, जिससे मुझे मालूम होजाय कि सडक साफ है !

२९ तारीख को मैं बाहर निकला और टोप उतारकर गुब्बारे का इंतजार करने लगा, लेकिन वहां कुछ भी न था। आधा घंटा बीता, सड़क पर गाड़ी की खड़खड़ाहट सुनाई दी। एक आदमी को गाते हुए भी सुना, लेकिन गुब्बारा नजर नहीं आया। आधा घंटा खत्म हुआ और मैं अन्त में निराश होकर अपने कमरे में लौट आया। सोचा कि कुछ बाधा आगई होगी।

उस दिन सचमुच अनहोनी होगई थी। सेंटपीटर्सबर्ग में सैकड़ों गुब्बारे बाजार में बिका करते हैं, लेकिन उस दिन एक भी गुब्बारा न था। एक छोटे बच्चे से एक गुब्बारा लिया गया, लेकिन वह पुराना था, उड़ा ही नहीं। मेरे मित्र फिर एक चश्मेवाले की दूकान में हाइड्रोजन बनाने का यत्न करने लगे। उन्होंने एक गुब्बारा भरा भी, लेकिन वह उड़ा ही नहीं। हाइड्रोजन में नमी रह गई थी। समय थोड़ा बचा था। फिर एक छाते में गुब्बारे को बांधा गया और एक महिला इस छाते को ऊंचा करके अहाते की दीवार के सहारे [illegible], लेकिन मुझे कुछ भी न दीख पड़ा—दीवार बहुत ऊंची थी और वह महिला बहुत ठिगनी! बाद को ज्ञात हुआ कि उस दिन गुब्बारे का न मिलना ही ठीक हुआ। जब मेरे भागने का समय निकल गया तो गाड़ी पूर्व-निश्चित मार्ग पर दौड़ाई गई। उसी सड़क पर दस-बारह गाड़ियां अस्पताल के लिए लकड़ी ढो रही थीं। इन गाड़ियों के कुछ घोड़े दाईं ओर भागे, कुछ बाईं ओर। नतीजा यह हुआ कि हमारी गाड़ी बहुत धीरे-धीरे चल सकी और एक जगह पर तो बिल्कुल ही रुक गई। अगर मैं उसमें होता तो निश्चित रूप से पकड़ा गया होता।

अब उस सड़क पर कई जगह इशारे देने का प्रबन्ध किया गया [illegible] मालूम हो जाय कि सड़क साफ है या नहीं। [illegible] मेरे साथी सन्तरियों की तरह खड़े हुए। एक साथी [illegible] पर टहलता था—यदि सामने गाड़ी दीखे तो [illegible]। दूसरा साथी मूंगफली खाते हुए एक पत्थर पर [illegible]—[illegible] दौड़ें, मूंगफली खाना बन्द कर दे। ये सब इशारे [illegible]—

उस घोड़ागाड़ीतक पहुंचने थे। मेरे मित्रो ने सामने का हरा बंगला भी, जो फाटक के सामने ही था, किराये पर ले लिया था, और जैसे ही सडक साफ हो, उसकी खिड़की मे एक आदमी को वायलिन बजाना था।

सब अगला दिन निश्चित हुआ। ज्यादा देरी खतरनाक होती। वास्तव में अस्पताल के अधिकारियो ने गाडी का आना-जाना नोट कर लिया था। कुछ सदेहात्मक खबरें भी उनके पास अवश्य पहुच गई होंगी, क्योंकि भागने से एक रात पहले मैंने अफसर को सतरी से कहते हुए सुना था—"तुम्हारे कारतूस कहा है?" संतरी ने अपने कारतूस निकाल लिये तो अफसर ने कहा—"क्या तुमसे नही कहा गया कि आज रात को चार कारतूस अपनी जेब में तैयार रखना?" और वह तबतक वहा खडा रहा, जबतक सतरी ने चारो कारतूस अपनी जेब में न रख लिये! जब वह चलने लगा तो फिर आज्ञा दी—"मुस्तैद रहो!"

उन सब इशारों की रूप-रेखा मुझतक पहुचानी थी। दूसरे दिन दो बजे मेरी एक रिश्तेदार मुझे घडी देने जेल आई। वैसे तो मेरे पास हर चीज एक अफसर के मार्फत आती थी, लेकिन चूकि यह घडी खुली थी, मेरे पास सीधी पहुंचा दी गई। इस घडी मे एक छोटा पुर्जा था जिसमे सारी तरकीब लिखी थी। मैं तो उसे पढ़कर काप गया! कितनी हिम्मत और कैसी दिलेरी का काम था! यदि किसीने घडी के ढाकन को खोल लिया होता, तो वह महिला, जिसका पीछा पुलिस पहले से ही कर रही थी, तुरत वहीं गिरफ्तार हो जाती। लेकिन मैंने देखा कि वह जेल के बाहर सड़क पर निकल गई और नौ-दो-ग्यारह होगई!

सदैव की भांति मैं चार बजे बाहर निकल आया और मैंने अपना इशारा कर दिया। थोड़ी देर में गाडी की गड़गड़ाहट सुनाई दी और हरे बगले से वायलिन की ध्वनि भी आई। लेकिन उस वक्त मैं अहाते के दूसरे कोने पर था। मैं फाटक की तरफ चला—मन में सोचा, 'बस, कुछ क्षण और!' लेकिन फाटक के पास पहुंचते ही सहसा वायलिन बजना बद होगया। करीब १५ मिनट बड़ी फिक्र में बीते। सोचता, 'वायलिन बंद क्यों होगया!' कुछ समय

बाद ही देखा कि कोई एक दर्जन गाड़ियाँ फाटक से अहाते में आईं। तुरन्त ही वायलिनवाले सज्जन ने एक जोशीली चीज छेड़ी, मानो वह कह रहा हो—"बस, यही वक्त है, आखिरी मौका!" मैं धीरे-धीरे जाता हुआ फाटक की ओर चला—इस आशंका से कि कहीं वायलिन फिर बंद न हो जाय।

फाटक पर पहुंचकर मैंने मुड़कर देखा कि संतरी ५-६ कदम पीछे था और उल्टी तरफ देख रहा था। 'बस यही मौका है'—मेरे मन में आया। तुरन्त मैंने जेल की पोशाक उतार फेंकी और दौड़ने लगा। इस लम्बी-चौड़ी पोशाक को उतारने का अभ्यास मैं बहुत दिनों से कर रहा था। वह कोट इतना बड़ा था कि किसी भी तरह एक झपाटे में उतरता ही नहीं था। मैंने उसकी बाहों के नीचे की सिलाई काट दी, फिर भी काम नहीं चला। आखिर मैंने उसे दो हरकतों से उतारने का अभ्यास प्रारंभ किया, पहले उसे बाँह से उतारता और बाद में उसे तुरन्त जमीन पर पटकता। धीरे-धीरे मैं इस क्रिया में पारंगत हो गया।

मुझे अपनी शक्ति पर बहुत विश्वास नहीं था, इसलिए दम बाकी रखने के लिए शुरू में धीरे-धीरे दौड़ा। लेकिन मैं कुछ ही कदम भागा होऊंगा कि किसान, जो दीवार के सहारे लकड़ी लगा रहे थे, चिल्लाने लगे—"पकड़ो! पकड़ो! वह भाग रहा है!" और वे मुझे पकड़ने को [illegible] भी दौड़े। अब तो मैं पूरे जोर से दौड़ा। मेरे मन में बस केवल एक ही धुन थी—'दौड़ो! दौड़ो!' फाटक के नजदीक गाड़ियों ने जो गड्ढे बना दिए थे उनका भी मैंने ख्याल नहीं किया।

मेरे मित्रों ने, जो हरे बंगले से मुझे भागते देख रहे थे, बताया कि संतरी ने तीन सिपाहियों के साथ मेरा पीछा किया था। संतरी और मेरे बीच [illegible] फासला कम था और उसे बराबर यही विश्वास बना रहा कि वह मुझे पकड़ लेगा। कई दफा उसने अपनी बंदूक की संगीन मेरी पीठ के [illegible] आगे बढ़ाई भी। एक दफा तो मेरे मित्रों ने समझा था कि संतरी ने [illegible]। संतरी को पूरा विश्वास था कि वह मुझे पकड़ लेगा और इसीलिए [illegible]

नहीं दागी। लेकिन मैं उससे आगे ही रहा और अंत में तो वह बिलकुल पिछड़ गया!

फाटक के बाहर निकलकर देखा तो दंग रह गया—गाड़ी में एक अफसर फौजी टोप पहने बैठा था, उसने मेरी तरफ देखा भी नहीं। मन में सोचा, 'बस, खात्मा होगया!' मित्रों ने लिखा था कि सड़क पर आने के बाद हर्गिज न घबराना। वहां तुम्हारी रक्षा के लिए कई साथी उपस्थित रहेंगे। मैंने निश्चय किया कि जिस गाड़ी में दुश्मन बैठा है, वहां न बैठूं। लेकिन जैसे-ही मैं गाड़ी के करीब पहुंचा, मैंने देखा कि इस अफसर के मेरे एक पुराने दोस्त की तरह के भूरे गलमुच्छे हैं। वह दोस्त हमारे गुट में तो नहीं था, लेकिन मेरा निजी मित्र अवश्य था और उसकी दिलेरी, और खासकर खतरे के मौके पर उसकी हिम्मत को मैं जानता था। मन में सोचा, 'वह यहां इस वक्त कैसे आ सकता है!' मैं उसका नाम लेकर पुकारनेवाला ही था, लेकिन फिर अपनेको जब्त किया और उसका ध्यान आकर्षित करने के लिए तालियां पीटीं। अब उसने मेरी ओर मुंह किया और तुरंत मैं उसे पहचान गया!

वह रिवाल्वर हाथ में लिये तैयार था। मुझसे कहा—"जल्दी बैठो।" और तुरंत गाड़ीवान से कहा—"जल्दी भगाओ, नहीं तो तुम्हारी जान की खैर नहीं।" घोड़ा बहुत ही अच्छा था। वह खास उसी मौके के लिए लाया गया था। पूरी तेजी से दौड़ा। पीछे से सैकड़ों आवाजें आ रही थीं—"पकड़ो! पकड़ो! भाग न जाय!" मेरे मित्र ने उसी समय मुझे एक शानदार ओवर-कोट पहना दिया। लेकिन पीछा करनेवालों से भी ज्यादा खतरा उस संतरी से था, जो अस्पताल के फाटक पर ही तैनात था, गाड़ी के खड़े होने की जगह से ठीक सामने। वह थोड़ा ही आगे बढ़कर आसानी से मुझे गाड़ी में चढ़ने से रोक सकता था। इसलिए एक मित्र को इस सिपाही का ध्यान बटाने के लिए रखा गया था। और इस मित्र ने किया भी वह काम बड़ी खूबी से। वह सिपाही पहले अस्पताल के रसायन-विभाग में काम कर चुका था। मेरे मित्र ने खुर्दबीन और उसके द्वारा दीखनेवाली चीजों के बारे में उससे बहस छेड़ दी। मनुष्य-शरीर पर रहनेवाले एक कीटाणु के विषय में उसने सिपाही

ने पूछा—"तुमने कभी देखा है कि उनके कितनी लम्बी पूछ होती है ?" "क्या कहते हो ? पूछ ?" फिर उसने कहा—"जीहां, उनके पूछ होती है और काफी बड़ी; खुर्दबीन से साफ दीखती है।" सिपाही ने उत्तर दिया—"अच्छा ! अपने ये किस्से तुम मुझे न सुनाओ।" मेरे मित्र ने फिर कहा—"मैं इनके बारे में ज्यादा जानता हूं—सबसे पहले तो खुर्दबीन से मैंने पूछ देखी थी !" जब मैं उनके नजदीक से भागकर अहाते के बाहर गाड़ी में बैठा तो यहां बहस चल रही थी ! पाठकों को यह घटना किस्से-कहानी-सी लगेगी, पर है यह पूर्णतया सत्य।

गाड़ी तुरत एक तंग गली में मुड़ गई—इसी दीवार की तरफ, जिसके सहारे किसान लकड़ी रख रहे थे। अब ये सब किसान मेरा पीछा करने में लगे थे ! गाड़ी ने मोड़ इतने सपाटे से लिया कि करीब-करीब उलट ही गई ! मैं तुरत आगे की ओर बढ़ गया और मित्र को भी आगे खींच लिया, इससे गाड़ी उलटने से बच गई ! तंग सड़क को पार कर हम बाईं तरफ मुड़े। वहां एक सार्वजनिक संस्था के सामने दो सशस्त्र सिपाही खड़े थे। उन्होंने हमारे साथी की फौजी टोपी को सलामी दी। वह अब भी काफी उत्तेजित था, इसलिए मैंने उससे कहा—"शान्त हो !" उसने उत्तर दिया—"सब ठीक हो रहा है, फौजी आदमी हमें सलामी दे रहे हैं।" अब गाड़ीवान ने मेरी तरफ मुंह किया। मैंने देखा कि वह भी अपना एक पुराना दोस्त है। हमारा घोड़ा तेज चाल से भागा जा रहा था। हर जगह हमें मित्र मिले। वे हमें इशारा कर रहे थे और हमारी सफलता के लिए मंगल-कामनाएं ! जब हम एक दरवाजे पर उतरे और गाड़ी को आगे भेज दिया। मैं सीधा जीना चढ़ गया और अपनी भाभी से मिला। वह [illegible] और साथ अत्यंत चिंतित भी। हमें और [illegible] आशा में थे। उसने मुझे तुरत दूसरी पोशाक पहनने और अपनी [illegible] दाढ़ी को साफ करने के लिए कहा। दस मिनट में [illegible] मैं घर से पार [illegible] और एक दूसरी गाड़ी ले ली।

इस बीच [illegible] ने [illegible] सिपाही और [illegible]

निकले और सोचने लगे कि क्या किया जाय। आस-पास एक भी [illegible] कोई गाडी ही न थी, सभी गाडियां हमारे मित्रों ने किराये पर ले रखी थीं। उस भीड़ की एक किसान बुढ़िया इन सबमें होशियार थी। उसने धीरे-से कहा—"बेचारे कैदी! वे लोग प्रोमपैक्ट पर अवश्य पहुंचेंगे, और अगर कोई आदमी इस रास्ते से दौड़कर सीधा वहां पहुंचे तो वे सचमुच ही पकड़े जायंगे।" वह बिल्कुल ठीक कह रही थी। अफसर नजदीकवाली गाड़ी पर गया और उन आदमियों से प्रार्थना की कि वे घोड़े दे दें, लेकिन उन्होंने देने से साफ इन्कार कर दिया और अफसर ने भी बल-प्रयोग नहीं किया। और वे वायलिन बजानेवाले सज्जन और वह महिला भी, जिन्होंने हरा बंगला किराये पर लिया था, बाहर निकल आये और उस बुढ़िया के साथ भीड़ में शामिल होगए। जब भीड़ छंट गई तो वे भी चम्पत होगए।

उस दिन तीसरे पहर मौसम भी अच्छा था। हम लोग उन टापुओं की ओर चल दिये, जिधर सेंटपीटर्सबर्ग के अधिकांश उच्च श्रेणी के लोग बसंत ऋतु में सूर्यास्त देखने जाया करते थे। रास्ते में बगल की सड़क पर एक नाई की दूकान पर मैंने अपनी दाढ़ी भी सफाचट करा ली। अब मुझे पहचानना काफी मुश्किल था। हम लोग उन टापुओं में अपनी गाड़ी में इधर-से-उधर काफी देर तक चक्कर लगाते रहे। हमसे कह दिया गया था कि अपने रात के विश्राम-स्थल पर जरा देर से पहुंचें। अब सवाल था, इस बीच कहां जाय? मैंने साथी से पूछा—"अब क्या करें?" वह भी थोड़ी देर सोचता रहा और फिर तुरंत गाड़ीवान से कहा—"डोनोन, होटल ले चलो।" यह सेंटपीटर्सबर्ग का सबसे शानदार होटल था। वह बोला—"तुम्हें देखने के लिए कोई भी आदमी उस आलीशान होटल में न पहुंचेगा। वे तुम्हें सब जगह ढूंढेंगे, लेकिन उस जगह का किसीको ख्याल भी न आवेगा। वहां हम लोग भोजन करेंगे और फिर कुछ सुरापान भी—तुम्हारे छुटकारे की सफलता की खुशी में।"

भला, ऐसे मुनासिब सुझाव का मैं जवाब ही क्या देता! इसलिए हम लोग डोनोन पहुंचे। रात के भोजन का समय था। कमरों में शानदार उजाला हो रहा था और वे आदमियों से भरे थे। उन सबको हमने पार किया और एक

अलग कमरा किराये पर लिया और वहां तबतक रहे, जबतक पूर्व निर्दिष्ट स्थान पर हमारे पहुंचने का समय नहीं होगया। जिस मकान में हम पहले-पहल उतरे थे, उसकी तलाशी हमारे वहां से हटने के थोड़ी देर बाद ही हो गई। लगभग सभी मित्रों के घरों की तलाशी हुई, लेकिन डोनोन में ढूंढने की किसीको न सूझी!

दो दिन बाद मुझे एक कमरे में चले जाना था, जो मेरेलिए एक फर्जी नाम से किराये पर ले लिया गया था। लेकिन जो महिला मेरे साथ जानेवाली थीं, उन्होंने उस मकान को पहले देख आने की होशियारी की। उस मकान के चारों तरफ जासूस थे! कई मित्र मुझसे कहने आए कि वहां जाना अब खतरे से खाली नहीं! पुलिस अत्यन्त सतर्क हो गई थी। खुफिया-विभाग ने मेरी तस्वीर की सैकड़ों प्रतियां छपवाकर बटवा दी थी। जो जासूस मुझे पहचानते थे, मुझे सड़कों पर तलाश कर रहे थे। जो पहचानते नहीं थे, वे उन पहरे-दारों को साथ लिये घूम रहे थे, जिन्होंने मुझे जेल में देखा था। जार बहुत ही क्रुद्ध था कि उसकी राजधानी में ही मैं दिन-दहाड़े इस तरह भाग गया! उसने हुक्म दे दिया था—"क्रोपॉटकिन को जरूर ही पकड़ना है।"

सेंटपीटर्सबर्ग में बने रहना असंभव था, इसलिए मैं नजदीक के गांवों में छिपा रहा। पांच-छः दोस्तों के साथ मैं उस गांव में रहा, जहां इस मौसम में सेंटपीटर्सबर्ग के लोग तफरीह के लिए आया करते थे। फिर तय किया गया कि मुझे कहीं बाहर ही चला जाना चाहिए। लेकिन एक विदेशी पत्र द्वारा हमें मालूम होगया था कि बाल्टिक और फिनलैंड प्रदेशों की सीमाओं के सब स्थानों और स्टेशनों पर वे जासूस तैनात थे, जो मुझे पहचानते थे। इसलिए मैंने निश्चय किया कि उस तरफ चलूं, जिस तरफ किसीका ख्याल ही न पहुंचे। एक मित्र का पासपोर्ट लेकर और इसके मित्र को साथ लेकर मैंने फिनलैंड की सीमा पार की और सीधा बोथनिया की खाड़ी के एक बन्दर-गाह पर पहुंचा। वहां से मैं स्वीडन निकल गया।

जब मैं जहाज पर बैठ गया और वह छूटने ही वाला था, तो मेरे साथी ने सेंटपीटर्सबर्ग की खबरें सुनाईं। [illegible] ने मेरी [illegible] को

गिरफ्तार कर लिया था। मेरे भाई की साली भी, जो भाई और भाभी के साइबेरिया चले जाने के बाद मुझसे हर महीने मिलने आती थी, हिरासत में ले ली गई थी। मेरी बहन को तो मेरे जेल से भागने के बारे में कुछ भी पता न था। जब मैं भाग आया था, उसके बाद मेरे एक मित्र ने उसको यह खबर सुनाई थी। मेरी बहन ने बहुत-कुछ कहा, आरजू-मिन्नत की कि मुझे कुछ भी पता नहीं; लेकिन फिर भी पुलिस उसको उसके बच्चों से अलग करके ले गई और पन्द्रह दिन जेल में रखा। मेरे भाई की साली को शायद कुछ भान तो हो गया था कि कुछ तैयारियां हो रही हैं; लेकिन उनमें उसका हाथ बिल्कुल न था। अधिकारियों में यदि तनिक भी बुद्धि होती तो समझ लेते कि जो महिला हर महीने नियमपूर्वक मुझसे मिलने आती थी, कम-से-कम वह तो इस षड्यन्त्र में शामिल न होगी। उसको दो महीने जेल में रखा गया। उसके पति ने, जो एक प्रतिष्ठित वकील था, उसे छुड़ाने का भरपूर प्रयत्न किया। उसे अधिकारियों से उत्तर मिला, "हमें भी मालूम होगया है कि इस षड्यन्त्र में इस महिला का कोई हाथ नहीं; लेकिन जिस दिन हमने इसे गिरफ्तार किया था, हमने ज़ार को यह सूचना भेज दी थी कि षड्यन्त्र की संचालिका गिरफ्तार कर ली गई है और अब ज़ार को यह समझाने में देर लगेगी कि षड्यन्त्र से इस औरत का कोई संबंध नहीं!"

बिना कहीं रुके मैं स्वीडन पार कर गया और क्रिश्चियाना पहुंचा। वहां हल नामक बंदरगाह के लिए जहाज मिलनेतक इंतजार करता रहा। जब मैं जहाज पर पहुंच गया, तो मैंने ज़रा चिंतित होकर सोचा—जहाज के ऊपर झंडा कहां का है—नारवे का, जर्मनी का या इंग्लैंड का? तुरंत मुझे दीखा, जहाज के ऊपर यूनियन जैक फहरा रहा है—वही झंडा, जिसके तले इटालियन, रूसी, फ्रांसीसी और सभी देशों के शरणार्थियों को शरण मिली है! मैंने हृदय से उस पताका का अभिनंदन किया।[1]

---

[1] उपर्युक्त वृत्तांत क्रोपॉटकिन के आत्म-चरित से लिया गया है।

'मंडल' द्वारा प्रकाशित प्राप्य साहित्य

गांधीजी लिखित

प्रार्थना प्रवचन (भाग १) ३)
" " (भाग २) २॥)
गीता-माता ४)
पन्द्रह अगस्त के बाद १॥), २)
धर्मनीति १॥), २)
द० अफ्रीका का सत्याग्रह ३॥)
मेरे समकालीन ५)
आत्मकथा ४)
आत्म-संयम ३)
गीता-बोध ॥)
ग्राम-सेवा ।=)
मंगल-प्रभात ।=)
सर्वोदय ।=)
नीति-धर्म ।=)
आश्रमवासियों से ।=)
हमारी मांग १)
सत्यवीर की कथा ।)
संक्षिप्त आत्मकथा १)
हिंद-स्वराज्य ।।।)
अनीति की राह पर १)
बापू की सीख ॥)
गांधी-शिक्षा (तीन भाग) १=)
आज का विचार (दो भाग) ।।।)
ब्रह्मचर्य (दो भाग) १।।।)
गांधीजी ने कहा था (५ भाग) १।)

विनोबाजी की लिखी

विनोबा-विचार (२ भाग) ३)
गीता-प्रवचन १॥)
शान्ति-यात्रा १॥)
जीवन और शिक्षण २)
स्थितप्रज्ञ-दर्शन १)
उपनिषदों का अध्ययन १)
ईशावास्यवृत्ति ।।।)
ईशावास्योपनिषद् =)
सर्वोदय-विचार १=)
स्वराज्य-शास्त्र ।।।)
भू-दान-यज्ञ ।)
गांधीजी को श्रद्धांजलि ।=)
राजघाट की सन्निधि में ॥=)
विचार-पोथी १)
सर्वोदय का घोषणा-पत्र ।)
जमाने की मांग =)

नेहरूजी की लिखी

मेरी कहानी ८)
हिन्दुस्तान की समस्याएं २॥)
लड़खड़ाती दुनिया ३)
राष्ट्रपिता २)
राजनीति से दूर २)
विश्व इतिहास की झलक सं० ८)
हिन्दुस्तान की कहानी सं० [illegible]

अन्य लेखकों की

आत्मकथा (राजेन्द्रबाबू) ८)
गांधीजी की देन " १॥)
गांधी-मार्ग =)
महाभारत-कथा ([illegible]) ५)
कुब्जा सुन्दरी " ३)
शिशु-पालन " ॥)
मैं भूल नहीं सकता [illegible]
[illegible]-कहानी ([illegible]) [illegible]
गांधी की कहानी ([illegible]) ४)
भारत-विभाजन की कहानी ४)
इंग्लैंड में गांधीजी ३)
बा, बापू और भाई ॥)
गांधी-विचार-दोहन ।।।)
गांधी अभिनन्दन ग्रंथ [illegible]
गांधी [illegible] ग्रंथ [illegible]
[illegible] ([illegible]) १॥)

प्रार्थना (वियोगी हरि)	॥)
अयोध्याकाण्ड " "	१)
भागवत-धर्म (ह. उ.)	६॥)
श्रेयार्थी जमनालालजी "	६॥)
स्वतन्त्रता की ओर "	४)
बापू के आश्रम में "	१)
मानवताके झरने (माव.)	१॥)
बापू (घ. विड़ला)	२)
रूप और स्वरूप "	॥=)
डायरी के पन्ने "	१)
ध्रुवोपाख्यान "	।)
स्त्री और पुरुष (टाल्स्टाय)	१)
मेरी मुक्ति की कहानी "	१॥)
प्रेम में भगवान "	२)
जीवन-साधना "	१।)
कलवार की करतूत "	।)
हमारे जमाने की गुलामी "	।॥)
बुराई कैसे मिटे "	१)
बालकों का विवेक "	।॥)
हम करें क्या	३॥)
धर्म और सदाचार	१।)
अंधेरे में उजाला	१॥)
भारत सावित्री (वा. अग्रवाल)	३॥)
साहित्य और जीवन	२)
कब्ज (म० प्र० पोद्दार)	१)
हिमालय की गोद में	२)
कहावतों की कहानियां	७)
राजनीति प्रवेशिका	१)
जीवन-संदेश (ख जिब्रान)	१।)
अशोक के फूल	३)
लोकमान्य तिलक	२॥)
हमारा कानून	५)
शांति की भावना	२॥)
बुद्धागम गाथा-सार	१॥)
सिंदूर की रानी	२)
जीवन-प्रभात	५)

का० का इतिहास (२ भाग)	२०)
पंचदशी (सं० य० जैन)	१॥)
सप्तदशी	२)
रीढ़ की हड्डी	१॥)
अमिट रेखायें	३)
एक आदर्श महिला	१)
राष्ट्रीय गीत	।)
तामिल-वेद (तिरुकुरल)	१॥)
आत्म-रहस्य	३)
थेरी-गाथाएं	१॥)
बुद्ध और बौद्ध साधक	१॥)
जातक-कथा (आनंद कौ.)	२॥)
हमारे गांव की कहानी	१॥)
अन्नों की खेती	२)
दलहन की खेती	१)
साग-भाजी की खेती	३)
पशुओं का इलाज (प.प्र.)	॥)
रामतीर्थ-संदेश (३ भाग)	१=)
रोटी का सवाल (क्रोपा०)	३)
नवयुवकों से दो बातें "	।=)
पुरुषार्थ (डा भगवान्‌दास)	६)
काश्मीर पर हमला	२)
शिष्टाचार	॥)
भारतीय संस्कृति	३॥)
आधुनिक भारत	५)
फलों की खेती	२॥)
मैं तन्दुरुस्त हूं या बीमार	।॥)
भा० नवजागरण का इतिहास	३)
गांधीजी की छत्रछाया में	२॥)
भागवत-कथा	३॥)
जय अमरनाथ	१॥)
प्रगति के पथ पर ६ पुस्तकें	१॥)
संस्कृत-साहित्य-सौरभ (२८ पुस्तकें) प्रति पुस्तक	।=)
समाज-विकास-माला प्रति पुस्तक	।=)